इस्लाम

एक स्वयं सिद्ध
ईश्वरीय जीवन व्यवस्था

राजेन्द्र नारायण लाल

विषय-सूची

दो शब्द

श्री राजेन्द्र नारायण लाल जी की इस पुस्तक को प्रकाशित करके हमें बड़ा हर्ष हो रहा है।

यह पुस्तक सर्वप्रथम 1978 ई० में इस्लामी साहित्य सदन, रामनगर, वाराणसी (यू०पी०) से प्रकाशित हुई थी, अब इसे साहित्य सौरभ, नई दिल्ली से प्रकाशित किया जा रहा है।

इस पुस्तक में जगह-जगह फुटनोट दिए गए हैं जो आदरणीय अबू मुहम्मद इमामुद्दीन रामनगरी द्वारा लिखित हैं।

श्री राजेन्द्र जी द्वारा लिखित सामग्री में कहीं-कहीं कोष्टक में स्पष्टीकरण हेतु कुछ शब्द प्रकाशक द्वारा दिए गए हैं।

देशवासियों में एक-दूसरे के धर्मों और विचारों का निष्पक्ष अध्ययन करने का वातावरण पैदा हो, यही उद्देश्य है इस पुस्तक को प्रकाशित करने का।

अतः इस पुस्तक के अध्ययन से जहाँ एक ओर इस्लाम के सही स्वरूप को समझने में मदद मिलेगी, वहीं दूसरी ओर देश में साम्प्रदायिक सौहार्द का वातावरण उत्पन्न होगा, ऐसी हमें आशा है।

इस पुस्तक के उर्दू, अंग्रेज़ी तथा अन्य भारतीय भाषाओं में अनुवाद भी किए जाएँगे।

—प्रकाशक

निवेदन

श्री राजेन्द्र नारायण लाल की पुस्तक प्रकाशित करते हुए हमें अत्यन्त हर्ष हो रहा है। हम विचारवान पाठकों से निवेदन करेंगे कि राजेद्र जी ने हिन्दू धर्म, बौद्ध मत और ईसाई मज़हब के विषय में जो विचार व्यक्त किए हैं औः हमने उनके समर्थन स्वरूप जो नोट लिखे हैं उनको विवाद न समझा जाए। यदि राजेन्द्र नारायण जी के विचार वास्तविकताओं पर आधारित हैं तो अति विचारणीय हो जाते हैं। राजेन्द्र जी पहले व्यक्ति नहीं हैं जिन्होंने इस्लाम के प्रति ऐसे विचार व्यक्त किए हैं। भारत और अन्य देशों के विद्वान ऐसे विचार व्यक्त करते ही रहते हैं और कितने तो इस्लाम ग्रहण कर लेते हैं। इस्लाम के प्रशंसक तो असंख्य हैं।

इस विषय में हम एक उदाहरण प्रस्तुत कर रहे हैं। जनवरी 1979 ई० के अन्त में रायचूर (कर्नाटक) के हाई कोर्ट के जज श्री रामाजी के सम्मान में मुसलमानों की ओर से एक सभा की गई। सभा में डिप्टी कमिश्नर, स्पेशल डिप्टी कमिश्नर पुलिस, एस०पी० और ज़िले के प्रमुख अधिकारी उपस्थित थे। जज महोदय और सब सज्जनों को पवित्र क़ुरआन के कन्नड अनुवाद की एक-एक प्रति उपहार स्वरूप दी गई। जज महोदय ने अनुवाद लेकर भाषण करते हुए कहा—

"पवित्र क़ुरआन का अनुवाद पाकर मेरे हर्ष की कोई सीमा नहीं है। वास्तव में यह मेरा बड़ा सौभाग्य और ख़ुदा की बड़ी मेहरबानी है। मैंने महान् क़ुरआन का अध्ययन नहीं किया है, इसलिए मैं इस पवित्र ग्रन्थ के विषय में विस्तारपूर्वक कुछ कहने का साहस नहीं कर सकता, किन्तु मैंने क़ुरआन के सन्देश के विषय में कुछ पुस्तकें पढ़ी हैं और कुछ सूरा (अध्यायों) का अध्ययन किया है, उनसे मुझे ज्ञात हुआ कि क़ुरआन ख़ुदा का सन्देश है जो ख़ुदा के पैग़म्बर मुहम्मद साहब (सल्ल०) पर उतरा, और यह सन्देश किसी विशेष सम्प्रदाय के लिए नहीं है, बल्कि समस्त मानवजाति के लिए है। इस्लाम का शब्द ही सारी मानवजाति को सलामती का सन्देश देता है। क़ुरआन ने बताया है कि ख़ुदा एक है जो सृष्टि का स्रष्टा, स्वामी और सारी इनसानियत के लिए दयालु और स्नेहशील है। पवित्र क़ुरआन का प्रारम्भ ही ख़ुदा की इस प्रशंसा से भरा हुआ है कि "सारी प्रशंसा ख़ुदा ही के लिए है जो सारी सृष्टि का स्वामी है, अति दयावान और कृपाशील है। क़ियामत के दिन का अधिकारी है। हम तेरी ही उपासना करते और तुझी से सहायता की प्रार्थना करते हैं। हमें सीधा रास्ता दिखा।" मैं इन शब्दों को कि "हमें सीधा रास्ता दिखा" फिर दुहराता हूँ। पहली सूरा के ये शब्द वास्तव में कुंजी स्वरूप हैं। इस

पवित्र पुस्तक में पूरी मानवजाति के पथ प्रदर्शन के लिए इन्हीं आरम्भिक शब्दों की व्याख्या की गई है। पवित्र क़ुरआन बताता है कि ख़ुदा एक है, जो सृष्टि का स्वामी है। अत: उसके बताए हुए रास्ते पर चलना चाहिए। क़ुरआन की शिक्षा के अनुसार चलने से ही मानव की बढ़ती हुई समस्याओं का समाधान हो सकता है।" (दैनिक पत्र 'दावत' दिल्ली, दिनांक, 4 फरवरी, 1979 ई०)

कर्नाटक के विभिन्न नगरों में इस अनुवाद का उद्घाटन समारोह हुआ है और हिन्दू भाइयों को यह अनुवाद दिया गया है, हिन्दू धार्मिक नेताओं ने भी जज महोदय की तरह पवित्र क़ुरआन के प्रति अपने उद्गार व्यक्त किए हैं।

पवित्र क़ुरआन को कोई ईश्वरीय ग्रन्थ माने या न माने किन्तु उसके अन्तिम धर्म ग्रन्थ होने से तो कोई इनकार नहीं कर सकता। पवित्र क़ुरआन के आविर्भाव को 14 सौ साल हो गए; इस लम्बी अवधि में बड़े-बड़े दार्शनिक, वैज्ञानिक, राजनीतिज्ञ, साहित्यकार और कवि हुए किन्तु इस दावे के साथ कोई भी नहीं उठा कि वह ईश सन्देष्टा है, उसपर ईश्वरीय ज्ञान अवतरित होता है और किसी भी लेखक व ग्रन्थकार ने यह दावा नहीं किया कि उसकी कृति, एक ईश्वरीय पुस्तक है। यह एक प्रत्यक्ष प्रमाण है महामान्य हज़रत मुहम्मद साहब (सल्ल०) के ईश सन्देशवाहक और पवित्र क़ुरआन के ईश्वरीय ग्रन्थ होने का।

सत्य ईश्वरीय धर्म का आधार यह विश्वास है कि ईश्वर के अतिरिक्त कोई ईश्वर नहीं है और न उसके ईश्वरत्व में कोई साझी है। वही सृष्टि का रचयिता, स्वामी और संचालक है, अत: वही एक उपास्य है उसके अतिरिक्त कोई उपास्य नहीं है। जो कोई भी निर्विकार मन से विचारपूर्वक पवित्र क़ुरआन का अध्ययन करेगा वह पाएगा कि पवित्र क़ुरआन आदि से अन्त तक इसी विश्वास पर आधारित है। उसके व्यक्तिगत, पारिवारिक, सामाजिक, सांस्कृतिक, राजनीतिक व आर्थिक निर्देशों का सारांश यह है कि मानव-जीवन सम्बन्धी समस्त विषयों की शिक्षा का स्रोत यही विश्वास है। इसी धर्म का नाम इस्लाम है, अर्थात् पूर्ण जीवन में ईश्वर का आज्ञाकारी बनने का धर्म।

पवित्र क़ुरआन यह नहीं कहता है कि वही एक मात्र ईश्वरीय ग्रन्थ है और वह कोई नवीन धर्म लेकर अवतरित हुआ है, वह बड़े विस्तार के साथ बताता है कि आदि सृष्टि से ईश्वर, मनुष्यों में से ही अपने सन्देशवाहक नियुक्त करता और उनके द्वारा अपनी शिक्षा और आदेश प्रदान करता रहा है, उन्हीं को नबी और रसूल कहा गया है। पवित्र क़ुरआन के अनुसार संसार की हर जाति में ईश्वर के सन्देशवाहक हुए और उन सबकी मूलभूत शिक्षा यही थी जिसे इस्लाम कहा गया है; अन्तर जो कुछ था वह देश और समय के अनुसार बाह्यरूप में था, आन्तरिक आत्मा

सबकी एक थी।

ईश-सन्देशवाहकों की परम्परा यह रही है कि हर आनेवाला सन्देशवाहक अपने से पहले आनेवालों तथा उनकी लाई हुई पुस्तकों का समर्थन करता रहा है। इसी परम्परा के अनुसार महामान्य हज़रत मुहम्मद (सल्ल०) ने अपने से पहले के सन्देशवाहकों का और पवित्र क़ुरआन ने अपने से पहले की ईश्वरीय पुस्तकों का समर्थन किया। राजेन्द्र नारायण जी ने बिलकुल सही कहा है कि इस्लाम ईश्वरीय धर्म का अन्तिम संस्करण है। यही बात ईश्वर ने पवित्र क़ुरआन में इस प्रकार कही है—

> "ऐ रसूल! हमने तुम्हारी तरफ़ ग्रन्थ (क़ुरआन) भेजा है। जो सत्य लेकर आया है और उससे पहले की पुस्तकों में से जो कुछ उसके सम्मुख विद्यमान है उसको सत्य सिद्ध करनेवाला तथा उसका संयोजक और रक्षक है।"
>
> (क़ुरआन, 5:48)

हमने जिस शब्द का अर्थ "संयोजक और रक्षक" लिया है वह बड़ा अर्थपूर्ण शब्द है। मूल अरबी शब्द "मुहैमिन" है। इसका अर्थ निगरानी, गवाही, अमानत, समर्थन और सहायता भी है, अतः इस आयत का मतलब यह हुआ कि वे सब सत्य शिक्षाएँ जो पहली ईश्वरीय पुस्तकों में थीं, क़ुरआन ने उनको अपने में सुरक्षित कर लिया है, वह उनपर निगहबान है, उनकी रखवाली कर रहा है और उनका समर्थक है, उन पुस्तकों में जितनी ईश्वरीय शिक्षा है उसको सत्य सिद्ध करता है तथा उसकी सत्यता पर गवाही देता है, इन पुस्तकों में ईश्वरीय शिक्षा के साथ दूसरों की बात जो मिला दी गई है, क़ुरआन की गवाही द्वारा उनको छाँटकर अलग कर दिया जा सकता है।

इस तथ्य को न समझकर क़ुरआन उतरने के समय के विधर्मी तथा वर्तमान समय के विरोधी कहते हैं कि क़ुरआन में पहली पुस्तकों की शिक्षाओं की नक़ल है और उन्हीं का उद्धरण है। उनके यह कहने का तात्पर्य यह होता है कि क़ुरआन कोई ईश-ग्रन्थ नहीं, बल्कि मानव-रचित पुस्तक है जो पहले के धर्म-ग्रन्थों के विभिन्न अंश लेकर (हज़रत) मुहम्मद (सल्ल०) द्वारा संकलित कर दी गई है और इसको (क़ुरआन) ईश्वरीय वाणी के रूप में प्रस्तुत किया जाता है। भ्रम व अज्ञान पर आधारित इस प्रकार के वक्तव्यों का एक जायज़ा लिया जाना तर्क संगत है।

कोई जाति जब धर्म-भ्रष्ट हो जाती और उसके सुधार के लिए ईश्वर की ओर से कोई सन्देशवाहक उठाया जाता, तो वह जाति दो भागों में विभक्त हो जाती। एक वर्ग जनसाधारण का होता, जिसमें स्वतन्त्र विचार के निःस्वार्थ लोग होते। वे ईश-सन्देशवाहक को स्वीकार करके उसके समर्थक हो जाते और दूसरा वर्ग जड़वादी एवं स्वार्थी मुखियाओं और पण्डों का होता, वह देखता कि इस व्यक्ति को ईश

सन्देशवाहक मान लेंगे तो उसके अधीन हो जाएँगे। हमारा मान, सम्मान और स्वार्थ समाप्त हो जाएगा। वह विरोधी बन जाते तो उसकी हत्या तक करने को तैयार हो जाते। इस अवस्था को पहुँचकर उनपर ईश्वर का प्रकोप आता और वे बर्बाद हो जाते। सुरक्षित वही रह जाते जो ईश सन्देशवाहक को माननेवाले होते थे। किन्तु कुछ पीढ़ियों के बाद उनकी सन्तान में धीरे-धीरे फिर बुराई फैलने लगती और वह आचरण-भ्रष्ट हो जाते, तो अपनी धार्मिक शिक्षा में भी परिवर्तन करके और नए शास्त्र रचकर धर्म को भी अपने आचार-व्यवहार के अनुकूल बना लेते ताकि आचरण-भ्रष्ट न कहलाएँ और उनका मान-सम्मान और भी सुरक्षित रहे।

यहूदियों और ईसाइयों ने अपने धर्म और धार्मिक पुस्तकों के साथ यही व्यवहार किया। पवित्र क़ुरआन में खोल-खोलकर बताया गया है कि हज़रत मूसा, हज़रत दाऊद, हज़रत ईसा आदि ईश-सन्देशवाहकों की शिक्षा क्या थी? यहूदियों और ईसाइयों ने इसको कितना भ्रष्ट कर दिया है? अन्दाज़ा लगाया जा सकता है कि हमारे देश भारत में भी क्या कुछ न हुआ होगा? यदि ऐसा नहीं हुआ तो कृष्ण जी के यह कहने का क्या अर्थ है कि जब-जब धर्म की हानि होती है तब-तब मैं आता हूँ। यद्यपि मेरे विचार से कृष्ण जी ने अपने को ईश्वर न कहा होगा, ईश्वर-प्रेषित कहा होगा। तथापि इस वचन से यह तो स्पष्ट ही सिद्ध है कि यहाँ भी समय-समय पर धर्म विकृत होता रहा है। गीता के कृष्ण को हम वृन्दावन की गोपियों के साथ विहार करते हुए किस रूप में पाते हैं? बुद्ध जी तो वेद-शास्त्र तक को नहीं मानते थे उनमें भी ईश्वरत्व मान लिया गया और उनको अवतारों में सम्मिलित कर लिया गया। स्वामी दयानन्द क्या कहते हुए संसार से चले गए?

यदि हममें धर्म की सच्ची भावना है और हम सत्य के जिज्ञासु हैं तो हमें निष्पक्ष भाव से वेद और उपनिषद् तथा क़ुरआन का अध्ययन करना होगा। हमें स्पष्टतया पता चल जाएगा कि इन पुस्तकों में कितनी ईश्वरीय शिक्षा है और कितनी बाहरी मिलावट।

—अबू मुहम्मद इमामुद्दीन
रामनगर (वाराणसी)

भूमिका

एक चमत्कार से लेकर एक तुच्छ घटना भी ईश्वरीय इच्छा का परिणाम है। यह सिद्धान्त इस साधारण प्रयास पर भी घटित होता है जो पाठकों के समक्ष इस पुस्तिका के रूप में प्रस्तुत है। यह पुस्तिका प्रश्न और उत्तर के आधार पर लिखी गई है। संक्षिप्तता इसकी विशेषता है, जो इस आशय से प्रेरित है कि तथ्यों को सर्वसाधारण के समक्ष दर्पण की तरह रखा जाए। उद्धरणों को जान-बूझकर इसलिए स्थान नहीं दिया जाता है कि सर्वसाधारण को विषय का परिचय सुगमतापूर्वक कराया जाए, ताकि वे केवल सामान्य ज्ञान के आधार पर स्वयं सिद्ध निष्कर्ष पर स्वयं पहुँच जाएँ और उन्हें किसी प्रकार का मानसिक तनाव या उलझन न हो। वृद्धावस्था में मुझे सेवा निवृत्ति के बाद आध्यात्मिक और मानसिक शान्ति की तीव्र आवश्यकता प्रतीत हुई। इस सन्दर्भ में मुझे अपने धर्म और अन्य धर्मों से साक्षात्कार करना पड़ा। तुलनात्मक विश्लेषण और मनन के आधार पर मैंने इस्लाम को माननीय, सर्व समस्याओं का आधारभूत और एकमेव समाधान के रूप में पाया, चाहे यह समस्याएँ व्यक्तिगत, पारिवारिक, नागरिक, सामाजिक, राजनीतिक, नैतिक, धार्मिक, मनोवैज्ञानिक, आर्थिक, राष्ट्रीय, अन्तर्राष्ट्रीय, इहलौकिक या पारलौकिक हों। संक्षेप में, इस्लाम इन सब मानव-समस्याओं रूपी तालों के लिए एक ही चाबी (Master-key) है। इस्लाम की स्पष्टता, शक्ति, सादगी, सार्वभौमिकता, प्रामाणिकता असंशोधनीय है। एक ईश्वरवाद व विशुद्ध एकेश्वरवाद प्रत्यक्ष है। साथ ही इस्लाम के पैग़म्बर हज़रत मुहम्मद का व्यक्तित्व अप्रतिम व सम्पूर्ण है। यदि कोई भी व्यक्ति इस्लाम को शुद्ध हृदय और पक्षपात रहित होकर समझने का प्रयास करे तो वह निस्सन्देह इस निष्कर्ष पर पहुँचेगा कि इस्लाम एक स्वयं सिद्ध वास्तविकता है। इस्लाम के पूर्व के अरब, साक्षात् पाप-ग्रस्त थे। हज़रत मुहम्मद ने उन्हें इस्लाम की शिक्षा के द्वारा अत्यधिक अल्प अवधि में सर्वथा धार्मिक तथा मानवता का आदर्श बना दिया। किसी भी कामी, क्रोधी, लोभी, व्यभिचारी, जुआरी, झगड़ालू, शराबी, हिंसक, चोर और निकृष्ट अविश्वासी जाति का उसी पीढ़ी में हृदय परिवर्तन कर देना ऐसा चमत्कार है, जिसका उदाहरण इतिहास में दूसरा नहीं है।[1] यदि अरब जाति सामूहिक

---

1. यह बात ज्ञातव्य है कि भारत में श्री रामचन्द्र जी, श्रीकृष्ण जी, महात्मा बुद्ध और जो महापुरुष भी हुए वे सब विद्वान तथा राजपरिवार से थे। देशवासियों में बड़े-बड़े विद्वान और दार्शनिक थे, रामचन्द्र जी के पिता दशरथ का राज्य तो आदर्श राज्य था, कृष्ण जी का मामा अत्याचारी था, कौरवों और पाण्डवों

(शेष फुटनोट अगले पृष्ठ पर)

रूप से दीर्घस्थायी अपराध रूपी रोग से इस्लाम रूपी औषधि के द्वारा अल्प काल में चंगी हो गई तो यह दवा ऐतिहासिक प्रमाण के आधार पर किसी मानव-समूह के लिए जो इस प्रकार के रोग से ग्रस्त हो, एक प्रामाणिक अचूक औषधि के रूप में मान्यता रखती है। प्राय: इस समय समस्त संसार इस प्रकार के रोग से न्यूनाधिक ग्रस्त है, लेकिन भारत में यह रोग महामारी का रूप धारण कर रहा है, जिसके लिए इस ईश्वर-प्रदत्त औषधि का प्रयोग अनिवार्य एवं आवश्यक है। भारतीय उपमहाद्वीप में मन्त्री से लेकर सन्त्री तक तथा बाज़ार से लेकर कचहरी तक भ्रष्टाचार में लिप्त हो रहे हैं। आशंका है कि अपवादों को छोड़कर, कहीं सम्पूर्ण राष्ट्र ही अपराध-प्रवृत्त न बन जाए। इस्लाम किसी धर्म से वैमनस्य नहीं रखता। वह मुहम्मद साहब से पूर्व प्रकट हुए सर्भ. ईश-दूतों का आदर करता है। उसकी मान्यता यह है कि मुहम्मद साहब अन्तिम ईश-दूत थे, उनसे पूर्व अन्य ईश-दूतों द्वारा प्रेषित ईश्वरीय निर्देशों में स्वार्थियों अथवा काल की गति द्वारा जो मिश्रण कर दिया गया था और जिसके परिणामस्वरूप मानव सत्यमार्ग से विचलित हो गए थे, उन्हें क़ुरआन के ईश्वरीय निर्देशों के रूप में अन्तिम परिमार्जित और अब से सर्वथा असंशोधनीय नियम प्रदान किए गए। यह वास्तविकता है। राम, कृष्ण, मूसा, बुद्ध और ईसा आदि के बाद मुहम्मद (सल्ल०) का आगमन ईश्वर की इच्छा से और मानव कल्याण की आवश्यकता

(पिछले पृष्ठ का शेष फुटनोट)

का विवाद पारिवारिक था, इसके अतिरिक्त देश में किसी और प्रकार के अधर्म का उल्लेख नहीं मिलता, बुद्ध जी भी देश में फैले हुए अधर्म के विरुद्ध नहीं उठे थे, बुढ़ापे और शव से प्रभावित होकर संसार से विरक्त हो गए थे।

महामान्य मुहम्मद साहब (सल्ल०) का सारा देश क़बीलों में बँटा हुआ था, कोई शासन-व्यवस्था ही न थी। सारे देश में दुराचार फैला हुआ था, मदिरा, व्यभिचार, अत्याचार, डकैती, लूटमार, अर्थात् कोई ऐसा कुकर्म न था जो प्रचलित न रहा हो। यहूदी और ईसाई भी धर्म भ्रष्ट और आचार भ्रष्ट हो गए थे। सारे देश में मूर्खतापूर्ण बहुदेववाद फैला हुआ था, महामान्य की जाति जिन बहुदेव-पूजकों की धार्मिक नेता थी वह सर्वथा विद्याहीन थी। मक्का नगर में, जो बहुदेववाद का केन्द्र था, गिनती के व्यक्ति चिट्ठी-पत्री भर लिखना-पढ़ना जानते थे। वह सर्वथा शिक्षाहीन थे तो पाठशाला क्या होती, पढ़ाता कौन ? महामान्य मुहम्मद साहब (सल्ल०) भी निरक्षर ही रह गए। मक्कावासियों के पास चार-छ: पृष्ठ की भी कोई धार्मिक पुस्तक न थी, न उनके देवी-देवताओं की कोई कथा। सब कुछ अव्यवस्थित, मौखिक और परिवर्तनशील कुप्रथाएँ व परम्पराएँ प्रचलित थीं और समस्त अरब-जाति इन प्रथाओं में लिप्त थी।

यह वह समय था जब संसार में कहीं सत्य-धर्म स्थापित न था। ऐसे देश, जाति तथा संसार को एकेश्वरवादी सत्य-धर्म से अवगत करने तथा आचार-व्यवहार की शुद्धि हेतु ईश्वर ने महामान्य मुहम्मद साहब (सल्ल०) को अकेला उठाया, आपके उपदेश और आदेश से एक ईश्वरवादी समूह स्थापित हो गया और 23 वर्ष के निरन्तर प्रयासों के परिणामस्वरूप ऐसी व्यापक तथा सर्वांग क्रांति हुई कि ईश्वरीय सत्य-धर्म स्थापित हो गया, एक शुद्ध सभ्यता और संस्कृति उत्पन्न हो गई तथा एक सुदृढ़ शासन स्थापित हो गया। ऐसी क्रांति का उदाहरण मानव जगत् में खोजे नहीं मिल सकता।

पूर्ति के हेतु ही तो हुआ। "ईश्वर एक है" और "मुहम्मद साहब उसके अन्तिम दूत हैं" यह इस्लाम का मूल मन्त्र है। वेद इतिहास की दृष्टि में प्राचीनतमकालीन पुस्तक हैं और हिन्दुओं के विश्वास के अनुसार यह ईश्वरकृत हैं। वैदिक मान्यता के अनुसार ईश्वर का एकत्व सिद्ध है। उसमें स्पष्ट उद्घोष है—"एकमेव द्वितीयो नास्ति" जिसका अर्थ है ईश्वर एक है और दूसरा नहीं है। अन्य आस्तिक धर्म भी ईश्वर को एक ही मानते हैं, भले ही कालान्तर में उनका एकेश्वरवाद विशुद्ध नहीं रहा। इसलिए इस्लाम का एकेश्वरवाद जो 'कलिमा' का प्रथम अंश है, सर्वग्राह्य है। रह गया कलिमा का दूसरा अंश "मुहम्मद साहब ईश्वर के अन्तिम दूत हैं।" यह अंश भी स्वयं सिद्ध तथ्य है। क्या इसके लिए प्रमाण की आवश्यकता है? कहा गया है कि प्रत्यक्ष किम् प्रमाणाम् अर्थात् जो प्रत्यक्ष एवं स्पष्ट है, उसके लिए प्रमाण की क्या आवश्यकता है। गणित और विज्ञान में बिन्दु के लिए परिभाषा है कि बिन्दु (Point)का माप नहीं है। इसके प्रमाण के लिए कहा जाता है कि यह स्वयंसिद्ध (Axiom) है ठीक यही तथ्य मुहम्मद साहब के अन्तिम दूतत्व के सम्बन्ध में घटित होता है[1]।

---

1. अब तो वेद ऋषियों की भविष्यवाणियों और महात्मा बुद्ध की सूचना से भी महामान्य मुहम्मद साहब (सल्ल०) का अन्तिम ईशदूत होना प्रमाणित हो गया है। इस विषय की जानकारी के लिए डॉक्टर वेद प्रकाश उपाध्याय एम०ए० (संस्कृत, वेद), डी० फिल (धर्म शास्त्राचार्य), डिप० इन जर्मन की पुस्तक एवं मेरी लिखित व्याख्या "वेदों के अन्तिम ऋषि नराशंस, कुरआन के अन्तिम ईशदूत मुहम्मद साहब" देखनी चाहिए। वेदप्रकाश जी अपनी पुस्तक की "भूमिका" में लिखते हैं—

"ऐतिहासिक विषयों पर शोध करने की मेरी उत्कृष्ट अभिलाषा सदैव रहती है। वेदों में, बाइबिल में तथा बौद्ध ग्रन्थों में ऋषि के ऋषि के रूप में जिसके आगमन की घोषणा की गई थी वह मुहम्मद साहब ही सिद्ध होते हैं, अत: मेरे अन्त:करण ने यह प्रेरणा दी कि इस सत्य को खोलना आवश्यक है, भले ही यह लोगों को बुरा लगनेवाला हो।"

"मैं धर्म में संकुचित भावना का पक्षपाती नहीं हूँ; कोई भी बात किसी भी स्थल में यदि उपयुक्त एवं उचित कही गई है तो मैं उसके बहिष्कार करने का साहस नहीं करता। वेदों में बारह पत्नीवाले एक उष्टरोही व्यक्ति के होने की भविष्यवाणी है जिसका नाम "नराशंस" है। नराशंस का अर्थ सायण ने यह किया है कि जो मनुष्य द्वारा प्रशंसित हो। मेरा विचार इस स्थल में सायण से सहमत नहीं। मेरे मत से नराशंस शब्द ऐसे "नर" अर्थात् व्यक्ति का सूचक है जो प्रशंसित हो "मुहम्मद" शब्द "नराशंस" का अरबी अनुवाद है।"

मुहम्मद का अर्थ तो वही है जो वेद प्रकाश जी ने किया है पर सायणाचार्य का अर्थ लिया जाए तो वह भी पूर्णरूपेण महामान्य मुहम्मद साहब (सल्ल०) पर घटता है क्योंकि संसार में महामान्य की जितनी प्रशंसा हुई है तथा हो रही है किसी अन्य व्यक्ति की न हुई है और न हो रही है।

महात्मा बुद्ध की सूचना के विषय में वेद प्रकाश जी लिखते हैं—

"ऋषि को बौद्ध धर्म की भाषा में बुद्ध कहा जाता है।... गौतम बुद्ध ने अपने मृत्यु काल के समय

(शेष फुटनोट अगले पृष्ट पर)

एक ग़ैर मुसलिम भी सामान्य बुद्धि से इसे ईमानदारी से स्वीकार करेगा कि मुहम्मद साहब के बाद कोई ऐसा व्यक्ति संसार में नहीं हुआ है जिसको एक धर्म प्रवर्तक के रूप में अनुयाइयों की इतनी विशाल संख्या और अटूट मान्यता प्राप्त हो। यदि कोई व्यक्ति दुस्साहस करके यह कल्पना भी करे कि इस्लाम के समानान्तर संख्या और विश्वास की दृष्टि से भविष्य में कोई संसारव्यापी धर्म सम्भव है, तो वह नासमझ ही समझा जाएगा। इस प्रकार इस्लाम का कलिमा "ला इला-ह इल-लल-लाहु मुहम्मदुर-रसूलुल-लाहु" उसी प्रकार सिद्ध है जिस प्रकार ज्यामिति का कोई प्रमेय (Theorem) जिसके सिद्ध करने की प्रक्रिया में Q.E.D. लिखा जाता है, अर्थात् ' जो सिद्ध करना था वह सिद्ध हो गया।" इस्लाम के पक्ष में इस समर्थन से ग़ैर मुसलिमों को रुष्ट नहीं होना चाहिए। दिन को दिन, रात को रात कहना उचित है। मैं विशेष रूप से अपने सहयोगी और सहधर्मी हिन्दुओं से अनुरोध करता हूँ कि वे मेरे इस निष्कर्ष को अपनी बहुगर्वित सहिष्णुता एवं विचार स्वातंत्र्य के सिद्धान्त के प्रकाश में दृष्टिगोचर करें तथा इस्लाम और मुहम्मद साहब को निष्पक्ष होकर समझने की कोशिश करें और उनके बारे में अपने निराधार संदेहों का निराकरण करें। ऐसा करने से वे अपने विचार स्वातंत्र्य के सिद्धान्त को लाभदायक रूप से गौरवान्वित करेंगे। अपने धर्म में साँप और पीपल के वृक्ष आदि को आराध्य बनाने से ही सहिष्णुता का परिचय पर्याप्त नहीं होता और न तो माँस, मदिरा, मतस्य, मैथुन और मुद्रा के सिद्धान्त के अनुयायियों को धार्मिक मान्यता देने से विचार स्वातंत्र्य प्रशंसनीय होता है। यह केवल कोरी विडम्बना है, यदि हम संसार के सर्वश्रेष्ठ ईशदूत

(पिछले पृष्ट का शेष)

प्रिय शिष्य नन्दा से यह कहा था—

'नन्दा इस संसार में मैं न तो पहला बुद्ध हूँ, न अन्तिम बुद्ध हूँ। इस संसार में सत्य तथा परोपकार की शिक्षा देने के लिए अपने समय पर एक और बुद्ध आएगा। वह पवित्र अन्तःकरणवाला होगा, उसका हृदय शुद्ध होगा, ज्ञान और बुद्धि से सम्पन्न तथा सब लोगों का नायक होगा, जिस प्रकार मैंने जगत् को अनश्वर सत्य की शिक्षा प्रदान की उसी प्रकार वह भी जगत को सत्य की शिक्षा देगा, जगत् को वह ऐसा जीवन-मार्ग दिखाएगा जो शुद्ध (अमिश्रित) तथा पूर्ण होगा। नन्दा! उसका नाम मैत्रेय होगा।"

ज्ञात हो कि डा० वेद प्रकाश जी ने महामान्य मुहम्मद साहब के विविध गुणों और विशेषताओं के सम्बन्ध में भविष्यवाणियाँ संग्रहीत की हैं और सब महामान्य पर घटती हैं। महात्मा गौतम बुद्ध की भविष्यवाणी शब्दशः महामान्य पर इस प्रकार घटित होती है मानो महात्मा ने महामान्य को देखा हो। डा० वेद प्रकाश जी ने एक बौद्ध विद्वान के लेख से सिद्ध किया है कि बौद्ध भाषा में "मैत्रेय" का अर्थ दया है और महामान्य का एक गुणवाचक नाम "रहमत" है, उसका अर्थ भी दया है। अन्तिम ईश्वरीय ग्रन्थ पवित्र क़ुरआन का एक वाक्य है—"वमा अरसलना-क-इल्ला रहमतल लिल आलमीन" (21:107) अर्थात् हमने तुमको जगत् के लिए दयास्वरूप भेजा है। वेद प्रकाश जी ने इस वाक्य को अपनी उपरोक्त पुस्तक में उद्धृत किया है।

और अद्वितीय सुधारक व मानव-जाति के महानतम परोपकारी हज़रत मुहम्मद को अपने दिल और दिमाग़ में उचित स्थान नहीं देते। अगणित हिन्दू धर्मगाथाओं में देवताओं और अवतारों द्वारा पापियों के नाश का उल्लेख सगर्व किया गया है, लेकिन हज़रत मुहम्मद जो ऐतिहासिक महामानव हैं, जिन्होंने पापियों का नाश न करके उनके पापों का नाश किया और इस प्रक्रिया द्वारा सामूहिक रूप से हृदय परिवर्तन करा के अति अल्प समय में पापियों को पुण्यात्मा बना डाला। हज़ार साल से भी अधिक समय से हिन्दू मुसलमानों के सम्पर्क में हैं, लेकिन आश्चर्य है कि वे इस्लाम की सामाजिकता और नैतिकता से अपने धर्म की उतनी श्रीवृद्धि नहीं कर पाए, जितनी कि वांछित थी, यद्यपि इस्लाम के भारत में आगमन के पूर्व अन्य धर्मों और अन्य सभ्यताओं और संस्कृतियों के प्रति हिन्दू पूर्ण रूप से समन्वयवादी थे। इस उदासीनता का मूल कारण विजित और विजेता की द्वेष-भावना है। साथ ही इसके लिए मुसलमान भी कम उत्तरदायी नहीं हैं। इस लम्बे सम्पर्क की अवधि में मुसलमानों ने अधिकतर अपना राजनैतिक परिचय ही दिया, हिन्दुओं को वास्तविक इस्लाम का परिचय नहीं दिया।

यह एक कटु सत्य है कि भारत में मुसलमान आए न कि इस्लाम[1]। मुसलमानों ने राजनीति को मुख्य रूप, और इस्लाम की नैतिकता, सभ्यता एवं संस्कृति को गौण रूप दे दिया। चूँकि मुसलमान स्वयं ही इस्लाम के आदर्श के अनुरूप अपने को न बना सके, इसलिए इस्लाम का भारत में पूर्णरूप से पूर्ण प्रकाशन न हो सका। भ्रष्टाचार की अभिवृद्धि के संदर्भ में उचित समय अब आ गया है कि मुसलमान अपने को इस्लाम की नैतिकता के साँचे में स्वयं ढालें और ग़ैर मुसलिमों को अपने उच्च जीवन-आदर्श से इस्लाम का आकर्षक मूल स्वरूप उपस्थित करें। मानवता के कल्याण के लिए यह परम आवश्यक है। भारत इस समय विशेष रूप से भ्रष्टाचार-ग्रसित है। राजनीतिक लोगों में नैतिकता का पुनर्जागरण सम्भव नहीं है। विचार प्रधान हिन्दू और कर्म प्रधान मुसलमान मिलकर व्याप्त अनैतिकता के निवारण हेतु अभियान के लिए शीघ्र अग्रसर हों।

इस पुस्तिका के सम्बन्ध में कुछ बता देना भी आवश्यक है। इस्लाम की प्रशंसा

---

1. यह सत्य है कि इस्लाम भारत में मुसलिम विजेताओं के द्वारा नहीं, वरन् मुसलमान सिद्ध सन्तों द्वारा आया, उन महापुरुषों ने इस्लाम का आदर्श भी उपस्थित किया, वे नीच-ऊँच और छूत-छात को नहीं मानते थे, उन्होंने नीचों को उठाया, गले से लगाया, मानवता का सम्मान प्रदान किया, वे जिस बस्ती में बैठ जाते उसके चोर, डाकू, व्यभिचारी, अत्याचारी सुकर्मी बन जाते, इतना ही नहीं इस्लाम क़बूल कर लेते। भारत के कुछ को छोड़कर सब मुसलमान उन्हीं सन्तों के समय के मुसलमानों की सन्तान हैं।

में अनेक मुसलिम और ग़ैर मुसलिम विद्वान बहुत कुछ लिख चुके हैं। द्वेष प्रवृत्ति वाले कुछ तथाकथित विद्वान इस्लाम और इस्लाम के पैग़म्बर की आलोचना कर चुके हैं। पाठक इस पुस्तिका के सम्बन्ध में प्रथम दृष्ट्या यह सोच सकते हैं कि मेरे जैसा सामान्य और सर्वसाधारण व्यक्ति इस्लाम पर क्या नई रोशनी डालेगा। इस सम्बन्ध में मेरा नम्र निवेदन है और चूँकि इस्लाम संसार के सर्वसाधारण का सर्वप्रिय धर्म है और उसकी पैग़म्बरी के लिए सर्वसाधारण ही में से ईश्वर ने हज़रत मुहम्मद को चुना और उसी की इच्छा से यह सर्वश्रेष्ठ पैग़म्बर आजीवन सर्वसाधारण की तरह संसार में रहे, ताकि जनसामान्य को उन तक पहुँचने में कोई कठिनाई न हो[1]। इसलिए मेरे जैसे साधारण व्यक्ति द्वारा इस पुस्तिका का प्रस्तुतीकरण कुछ न कुछ तो वज़न रखता ही है, विशेषकर सर्वसाधारण के लिए, जो कि संसार में बहुसंख्यक हैं। मुझे आशा ही नहीं विश्वास भी है कि इस्लाम के पूर्वग्रही आलोचक इस पुस्तिका द्वारा इस्लाम और पैग़म्बरे इस्लाम के प्रति मिथ्या-धारणा से विरक्त होंगे।

राजेन्द्र नारायणलाल, एम०ए०
वाराणसी

जुलाई, 1978 ई०

---

1. महामान्य हज़रत मुहम्मद का अरब पर शासन स्थापित हो गया था। आप चाहते तो अपने लिए राजमहल बनवा सकते थे, राजसी जीवन व्यतीत कर सकते थे, परन्तु ऐसी अपूर्व सफलता से आपके अति साधारण जीवन में नाममात्र को भी परिवर्तन न हुआ। मिट्टी की दीवारों की छोटी-छोटी खजूर के पत्तों से छायी हुई कोठरियाँ, द्वार पर किवाड़ की जगह टाट का परदा, रूखा-सूखा भोजन, अधिकतर फ़ाक़ा, पेवन्द लगे हुए वस्त्र, टाट और कम्बल का बिस्तर, खजूर के पत्तों से छायी हुई मसजिद में चटाई पर बैठकर वे अरब पर शासन करते थे। आप ईश्वर से प्रार्थना करते थे कि मैं निर्धनों में जिऊँ और निर्धनों में ही मरूँ। ऐसे थे महाईशदूत हज़रत मुहम्मद। इतिहास में ऐसे शासक का उदाहरण नहीं है।

धर्म का महत्त्व

प्रश्न — क्या इस वैज्ञानिक युग में भी धर्म का महत्त्व शेष है?

उत्तर — अवश्य! विज्ञान और धर्म एक दूसरे के विरोधी नहीं हैं। विज्ञान एक विकासशील पहलू है। पाषाणकाल से परमाणु युग तक विज्ञान का विकास होता आया है और भविष्य में होता रहेगा। पाषाणकाल में पत्थर के हथियार का वही महत्त्व था जो इस आधुनिक युग में एटन बम का है। किसी समय एक बैलगाड़ी का वही महत्त्व था जैसा कि आज एक वायुयान का है। इससे स्पष्ट है कि एक वैज्ञानिक अन्वेषण की गरिमा का महत्त्व समय की गति के साथ घटता जाता है। किन्तु इसके विपरीत सत्य-धर्म के सिद्धान्त शाश्वत और सार्वकालिक होते हैं। विज्ञान मनुष्य के रहन-सहन के स्तर में अभिवृद्धि कर सकता है, जिस पर यदि नियंत्रण न किया जाए तो मानव दानव में परिवर्तित हो जाता है। दूसरी ओर एक पूर्ण धर्म रहन-सहन के स्तर (Standard of Living) के साथ-साथ मनुष्य को जीवन-स्तर (Standard of Life) के लिए भी प्रेरित करता है। सिनेमा द्वारा मनोरंजन का जीवन में उपयोग भले ही हो, लेकिन बाल-बच्चों के उपवास के मूल्य पर नहीं। एक मोटरकार आवश्यक है, लेकिन घूसखोरी द्वारा नहीं। चोरबाज़ारी द्वारा अर्जित धन से बना हुआ रहन-सहन का स्तर सर्वथा अनुचित है। कौन अस्वीकार करेगा कि बड़े-बड़े और आश्चर्यजनक आविष्कारों के बावजूद इस समय मानवता असम्भव है। जितना ही मनुष्य भौतिक सुख के पीछे दौड़ रहा है, वह उतना ही वास्तविक आनन्द से विहीन होता जा रहा है। वर्ड्सवर्थ ने ठीक ही कहा है कि हम भौतिक सुख में लीन हो गए हैं। विज्ञान एक दुधारी तलवार है। बिजली निस्संदेह घर को प्रकाशमान कर देती है, लेकिन यदि असावधानी से मनुष्य का उससे स्पर्श हो जाए, तो तत्काल उसके जीवन को अंधकार में बदल सकती है, यही नहीं उसके बचानेवाले का भी वही परिणाम होता है यदि बचानेवाले ने सावधानी का उपाय नहीं अपनाया। विज्ञान में गुण व अवगुण दोनों निहित हैं, लेकिन विज्ञान की बुराइयाँ पूर्ण धर्म के सार्वभौम सिद्धान्तों द्वारा नियंत्रित की जा सकती हैं। एटम बम, हाइड्रोजन बम और न्यूट्रान बम विज्ञान की देन हैं, लेकिन रेडक्रास और संयुक्त राष्ट्रसंघ धर्म की देन हैं। जो कुछ भी हो हमें जीवित रहना है और दूसरों को भी जीवित रहने देना है, तो सन्तोष और आदान-प्रदान की नीति ही से व्यक्तिगत, पारिवारिक, सामाजिक, राष्ट्रीय और अन्तर्राष्ट्रीय सुख-शान्ति सुनिश्चित हो सकती है। परलोक की भी चिन्ता

करनी है। चूँकि सत्य-धर्म ईश्वर के माध्यम से एक मानव का दूसरे मानव से सम्बन्ध निरूपित करता है, इसलिए सर्वशक्तिमान, सर्वज्ञ, सर्वव्यापक ईश्वर की क्षत्र-छाया में हमें अपने जीवन रूपी भवन का निर्माण करना है — वह भवन जिसमें इतनी मंज़िलें होंगी कि स्वयं की, परिवार, राष्ट्र की तथा सर्व मानवता की जगह होगी और जिसकी नींव होगी सत्य-धर्म पर, जिसका गारा-मसाला होगा एकेश्वरवाद और विश्वबन्धुत्व का मिश्रण।

प्रश्न — अब प्रश्न यह उठता है कि संसार में जितने धर्म प्रचलित हैं, वे सभी एक-दूसरे के विरोधी हैं और अपने को ही श्रेष्ठ बताते हैं। इस समस्या का समाधान कैसे हो?

उत्तर — इसके लिए जीवित और महत्त्वपूर्ण धर्मों का विश्लेषात्मक, तुलनात्मक और समन्वयात्मक अध्ययन अपेक्षित है। संसार में एक धर्म होना तो सम्भव नहीं है। अपितु हम कम से कम सर्वोत्तम गुणग्राही (Eclectic) बन सकते हैं। चीन का प्राचीन धर्म कन्फ़्यूशस धर्म था जो अब प्राय: अप्रचलित है। जैन धर्म, हिन्दू धर्म में विलीन हो गया है। पारसी धर्म, सिख धर्म, यहूदी धर्म और शिन्तो धर्म या तो क्षेत्रीय हैं या संख्या के दृष्टिकोण से नगण्य हैं। अत: इस प्रयोजनार्थ हिन्दू धर्म, बौद्ध धर्म, ईसाई धर्म और इस्लाम धर्म की तुलनात्मक समीक्षा पर्याप्त है। यहाँ पर यह उल्लेख कर देना उचित होगा कि इन सब धर्मों की समीक्षा स्वामी दयानन्द सरस्वती ने भी सत्यार्थ प्रकाश नामक पुस्तक में की है। बड़े दु:ख की बात है कि स्वामीजी ने पूर्वाग्रह और संकुचित दृष्टिकोण का मार्ग अपनाया और उन्होंने केवल 'बाल की खाल निकालना' को अपनी समीक्षा का आधार बनाया। परिणाम यह हुआ कि स्वामीजी भले ही धर्म सुधार की भावना से प्रेरित रहे हों, अपने आन्दोलन को व्यापक न बना सके और उनका आर्य समाज जो कार्य में तो नहीं, बल्कि विचार में धर्मांध था, अल्पकाल ही में महत्वहीन और शक्तिहीन हो गया।

हिन्दू धर्म

हिन्दू धर्म का कोई संस्थापक नहीं है।[1] लेकिन इसके अनुसार वेद श्रुति अर्थात् ईश्वरकृत ग्रन्थ है, लेकिन सामान्य हिन्दू ने शायद ही कभी वेद देखा हो, उसके घर में उसकी उपस्थिति का तो प्रश्न ही नहीं है। इस परिस्थिति में सामान्य हिन्दू के लिए उससे ज्ञान-प्राप्ति का प्रश्न तो बहुत दूर की बात है। यही नहीं सनातन धर्म जो हिन्दुओं के बहुमत का धर्म है, वह ब्राह्मणों को छोड़कर अन्य वर्णों को वेद पढ़ने से रोकता है। यह हिन्दू धर्म का आश्चर्य है कि सामान्य हिन्दू जिसमें क्षत्रिय, वैश्य व शूद्र सभी हैं, अपने ईश्वरकृत ग्रन्थ को पढ़ने से भी वंचित हैं।

इस आपातकाल का, जिसके अनुसार ब्राह्मणों के अतिरिक्त अन्य हिन्दू, वेदों के पढ़ने से वंचित किए गए, कारण सामान्य बुद्धि की समझ से बाहर है। संक्षेप में ये ईश्वरकृत ग्रन्थ या तो किसी विशिष्ट संस्कृत के पुस्तकालय की शोभा बढ़ाते हैं या किसी नगर में उंगली पर गिनने भर ब्राह्मणों के घर के कोने में शोभायमान रहते हैं। एक शताब्दी पूर्व आर्यसमाज ने इस धारणा के विरुद्ध आन्दोलन चलाया और हिन्दूमात्र के लिए वेदों के अध्ययन के हक़ में आवाज़ उठाई, किन्तु लोक-प्रचलित हिन्दू धर्म पर इसका कोई प्रभाव नहीं पड़ा। अन्य वर्ण और स्त्री समाज अपने ईश्वरकृत धर्मग्रन्थ वेद के अध्ययन से मनुस्मृति के आदेश के अनुसरण में वर्जित है। यह तो दशा है, हिन्दुओं के ईश्वरकृत धर्म ग्रन्थ की। वेदों की प्राचीनता ऐतिहासिक है।

वेदिक धर्म का आधार एकेश्वरवाद था, न उसमें मूर्तिपूजा थी और न उसमें

---

1. इस सन्दर्भ में प्रसिद्ध विद्वान रामधारी सिंह दिनकर का शोध देख लेना भी उपयुक्त होगा। वे अपनी पुस्तक — "संस्कृति के चार अध्याय" में "हिन्दू संस्कृति के रचयिता" शीर्षक में लिखते हैं — "असल में हज़रत ईसा ने जैसे ईसाइयत को और हज़रत मुहम्मद ने इस्लाम को जन्म दिया हिन्दू धर्म ठीक उसी प्रकार किसी एक पुरुष की रचना नहीं है। अगर आम किसी हिन्दू से पूछ लें कि तुम्हारा धर्म ग्रन्थ कौन-सा है तो वह सहसा कोई एक नाम नहीं बता सकेगा। इसी प्रकार यदि आप उससे यह प्रश्न करें कि तुम्हारा मुख्य धर्म-नेता, अवतार, नबी या पैग़म्बर कौन हैं? तब भी उससे किसी एक अवतार या महात्मा का नाम लेते नहीं बनेगा और यही ठीक है भी, क्योंकि हमारा धर्म न किसी एक महात्मा से आया है और न किसी एक सम्प्रदाय से। सच तो यह है कि हिन्दुत्व किसी एक विश्वास पर आधारित नहीं है, बल्कि वह अनेक विश्वासों का समुदाय है। जिस प्रकार भारतीय जनता की रचना उन अनेक जातियों को लेकर हुई है जो समय-समय पर इस देश में आती रहीं, उसी प्रकार हिन्दुत्व भी उन विभिन्न जातियों के धार्मिक विश्वासों के योग से बना है।" (पृष्ठ 45)

आगे भी हम "संस्कृति के चार अध्याय" से विस्तृत उद्धरण प्रस्तुत करेंगे।

पुनर्जन्म का सिद्धान्त मूलतः था।[1] चार वर्णों अर्थात् ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र का विभाजन भी एक प्रकार से अर्थशास्त्र के श्रम विभाजन के रूप में था, लेकिन आपस में इन वर्णों में विवाह भी होता था। विश्वामित्र क्षत्रिय होते

---

1. पाठकों को शायद श्री राजेन्द्र जी की यह बात आश्चर्यजनक मालूम हो कि वैदिककाल में आवागमन की मान्यता नहीं थी, परन्तु ऐसी बात राजेन्द्र जी ही नहीं कहते, दूसरे विचारशील विद्वान भी कहते हैं। रामधारी सिंह दिनकर ''संस्कृति के चार अध्याय'' में लिखते हैं—

''नास्तिकों और भौतिकवादियों को छोड़कर ऐसे हिन्दू बहुत कम हैं जो परलोक-भय को न मानते हों, यह वैदिक काल की भावना से भिन्न भावना है। वैदिक ऋषि नास्तिक या भौतिकवादी तो न थे किन्तु मृत्यु से डरने की बात उन्हें नहीं सूझी थी, न उनमें यह भावना थी कि स्वर्ग के साथ कहीं कोई नरक भी हो सकता है जहाँ आत्माओं को यातनाएँ झेलनी पड़ती हैं। वस्तुतः आत्मा, पुनर्जन्म, कर्मफलवाद के विषय में वैदिक ऋषियों ने अधिक नहीं सोचा था।'' (पृष्ठ 81)

वर्तमान आवागमन के सिद्धान्त का आधार यह विचार है कि मनुष्य, पशु-पक्षी, कीड़े-मकोड़े, वृक्ष आदि जितने प्राणी हैं वे सब अपने-अपने पूर्व जन्म के कर्मफल स्वरूप उत्पन्न हुए हैं, यदि यह न माना जाए तो ईश्वर पर अन्याय का दोष आएगा कि उसने किसी प्राणी को उच्चकोटि का शरीर दिया और किसी को निम्नकोटि का, मनुष्यों में भी किसी को बलवान, किसी को दुर्बल, किसी को धनवान, किसी को निर्धन, किसी को बुद्धिमान, किसी को बुद्धिहीन आदि बनाया। इसका अर्थ यह हुआ कि सब प्राणियों में मुख्य प्राणी मनुष्य है; क्योंकि सुकर्म और कुकर्म का नियम मनुष्य पर ही लागू होता है। इस सिद्धान्त पर यह प्रश्न उठता है कि मनुष्य से पहले पृथ्वी पर पेड़-पौधे आदि न होते तो मनुष्य खाता क्या? जीवित कैसे रहता? साथ ही यह प्रश्न भी होता कि आदि सृष्टि में मनुष्य के पूर्व जन्म के कर्मफल का क्या अर्थ?

इसका उत्तर दिया गया है कि सृष्टि अनादि और अनन्त है। कहा जाता है कि पुस्तकों में तो सृष्टि की उत्पत्ति का विस्तारपूर्वक वर्णन मिलता है। उत्तर दिया गया है कि सृष्टि की उत्पत्ति और विकास का एक चक्र है वह अनादि और अनन्त है। यह सृष्टि अनादि काल से बनती आ रही है तथा अनन्त काल तक बिगड़ती रहेगी। इस पर यह प्रश्न उठता है कि पुस्तकों के अनुसार यह सृष्टि स्वयं उत्पन्न नहीं हो गई है, इसे ईश्वर ने उत्पन्न किया है तथा उसी के द्वारा इसका अन्त होगा, अतः इसका अनादि और अनन्त चक्र कैसे सिद्ध होता है? उत्तर दिया गया है कि ईश्वर अनादि और अनन्त है अतः उसका कार्य अनादि और अनन्त होता है।

इस पर भी प्रश्न होता है कि सृष्टि भी तो ईश्वर का एक कार्य ही है, इसका विनाश क्यों होता है? आप बिना युक्ति और प्रमाण के सृष्टि को अनादि और अनन्त मान लीजिए तब भी आवागमन सिद्ध नहीं होगा क्योंकि हर सृष्टि में इसकी अवस्था यही होगी कि सब प्राणियाँ उत्पन्न होंगी और उनका पूर्वजन्म प्रलय काल तक सिद्ध न होगा। श्री दुर्गा शंकर सत्यार्थी ने ऋग्वेद के सात मन्त्रों से सिद्ध किया है कि क़ुरआन के अनुसार वेद भी दो ही जन्म बताते हैं, एक जन्म जो वर्तमान लोक में होता है और दूसरा प्रलय काल में। प्रलय काल में जन्म कर्म-फल भोगने के लिए होगा। स्वामी दयानन्द पर आश्चर्य प्रकट किया है कि वह आवागमन कैसे मानते थे? सत्यार्थी जी का लेख (मर्कज़ी मक्तबा इस्लामी, नई दिल्ली- 25 द्वारा प्रकाशित पुस्तक) ''वेद और क़ुरआन'' में देखा जा सकता है।

वास्तव में वेद में इतनी बुद्धि विरुद्ध मान्यता नहीं हो सकती। यह बाद के किसी विचारक की धारणा है जिसने सृष्टि पर विचार नहीं किया। ईश्वर ने इसका निर्माण ही विभिन्नता पर किया है तथा यह विभिन्नता द्वारा ही चल रही है। धरती और आकाश, सूर्य और चन्द्रमा को देखिए, सभी मनुष्य एक ही श्रेणी के होते तो कौन किसको मानता, व्यवस्था कैसे स्थापित होती?

हुए भी गुण कर्म से ब्राह्मण ऋषि के पद को प्राप्त हुए। इसी प्रकार परशुराम ब्राह्मण होते हुए भी गुण कर्म से क्षत्रिय थे। वशिष्ठ ऋषि के लिए कहा जाता है कि वे दासी-पुत्र थे। बाल्मीकि ऋषि के लिए कहा जाता है कि वे बहेलिया थे। राम के लिए कहा जाता है कि उन्होंने शबरी भिलनी (शूद्र) के जूठे बेर प्रेम से खाये। राम की मान्यता से रावण और बालि की विधवा का उनके देवरों से पुनर्विवाह भी हुआ था। यों तो वेदों में नियोग का भी उल्लेख है। कृष्ण की मान्यता में सगोत्र विवाह भी होते थे। राम ने अपनी स्त्री का परित्याग भी किया था, भले ही वह उचित था या अनुचित, यह दूसरी बात है। दशरथ की तीनों रानियाँ कौशल्या, कैकेयी और सुमित्रा पति के मरने के बाद सती नहीं हुई थीं और न कृष्ण के समय में उनकी सम्बन्धिनी कुन्ती सती हुई थी।

स्पष्ट है कि वैदिक और रामायण और महाभारत काव्य के समय का धर्म और संस्कृति मध्यकाल में परिवर्तित हो गई और वर्तमान हिन्दू धर्म और संस्कृति अपने आदर्श राम और कृष्ण के समय के धर्म और संस्कृति के सर्वथा विपरीत है। हिन्दू धर्म में परिवर्तन और विरोधाभास समय-समय पर आर्यों, द्रविड़ों, सिन्धु घाटी के लोगों, हूण, कुशान आदि जातियों के मिश्रण और परिणामतः उनके धार्मिक विश्वासों के मिश्रण के फलस्वरूप हुआ। वेदों, उपनिषदों और आरण्यकों का एकेश्वरवाद धीरे-धीरे बहुदेववाद में परिणत होता गया। ऋषियों द्वारा प्रतिपादित स्मृतियों और दर्शनशास्त्रों को भी धार्मिक मान्यता प्रदान हो गई। रामायण और महाभारत काव्यों को भी धार्मिक मान्यता प्राप्त हो गई। तत्पश्चात् अठारह कपोल कल्पित पौराणिक गाथाओं को तो सर्वोपरि धार्मिक मान्यता प्राप्त हो गई। नास्तिक जैन धर्म और बौद्ध धर्म का भी हिन्दू धर्म में विलय हो गया। यही नहीं वैष्णव, शैव और शक्ति के अलावा वाममार्ग की भी, विचार-स्वातन्त्र्य के नाम पर धार्मिक मान्यता प्राप्त हो गई। चार सौ साल पहले तत्कालीन बोल-चाल की भाषा में अपनी आत्मा के सुख के लिए अपनी पत्नी से प्रताड़ित तुलसीदास के रामचरित मानस को सर्वोपरि और व्यापक मान्यता यहाँ तक मिली कि उत्तरी भारत में वही हिन्दू धर्म का आधार स्तम्भ है, यद्यपि इसका हिन्दी में होना दक्षिण भारत में उसकी अप्रियता का कारण है। यही नहीं तुलसीकृत अन्य ग्रन्थों को भी धार्मिक मान्यता प्राप्त है, विशेषकर हनुमान चालीसा को। चार सौ साल ही पूर्व लिखी हुई बोल-चाल की बृजभाषा में सूरदास रचित सूरसागर का धार्मिकजन पाठ करते हैं। नए देवी-देवताओं का आविष्कार अभी भी जारी है जिनमें आधुनिकतम सन्तोषी माँ का आविष्कार है। हिन्दू धर्म विशाल धार्मिक साहित्य का दावा करता है। ईश्वरकृत 4 वेदों में ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद और अथर्ववेद हैं। इनके विषयों से 99 प्रतिशत हिन्दू अनभिज्ञ हैं। अनेक स्मृतियाँ हैं, जिनकी विचारधाराएँ भिन्न-भिन्न हैं। अनेक उपनिषद् और

आरण्यक एवं योगवशिष्ट भी हैं। छः दर्शनशास्त्र हैं और सबकी धारणाएँ भिन्न-भिन्न हैं। अल्पसंख्यक शास्त्रियों को छोड़कर बहुसंख्यक हिन्दू इन ग्रन्थों की विषय-सूची तक से अनभिज्ञ हैं। रामायण भी दो हैं वाल्मीकिकृत और तुलसीकृत। इनके आदर्श भी भिन्न-भिन्न हैं। 18 पुराण हैं। इनके अनुसार शंकरजी भाँग तक पीते थे और देवताओं के राजा इन्द्र इतने कामी थे कि स्वर्ग की परियों से भी सन्तुष्ट न होकर पृथ्वी पर उतर आए और अहिल्या नाम की ऋषि-पत्नी से बलात्कार किया था। 6 शास्त्र हैं जिनसे सामान्य हिन्दू सर्वथा अपरिचित हैं। हिन्दू धर्म के पाँच मुख्य आचार्य हैं : शंकर, रामानुज, बल्लभ, माध्व और निम्बार्क और इन सबकी परम्पराएँ, आदर्श और मान्यताएँ सब भिन्न-भिन्न हैं। इनके अलावा अगणित आचार्य हैं। तीन मुख्य सम्प्रदाय हैं वैष्णव, शैव और शाक्त। सब एक-दूसरे के विपरीत हैं। घोर आस्तिक शंकराचार्य के अनुयायी भी हिन्दू हैं और नास्तिक जैनी और वाममार्गी भी हिन्दू। प्याज, लहसुन तक न खानेवाले भी हिन्दू हैं और घोर अखाद्य पदार्थ खानेवाले औघड़ भी हिन्दू हैं। पीताम्बर धारण करनेवाले साधु भी हिन्दू हैं और सर्वथा नंगे रहने वाले साधु भी हिन्दू हैं। वैष्णव में मांस मना है। शाक्तों में मांस मान्य है। हिन्दू, सिद्धान्त से एकेश्वरवादी हैं और कर्म से बहुदेववादी। सिद्धान्ततः हिन्दुओं का ईश्वरकृत धर्मग्रन्थ वेद है, किन्तु वस्तुतः उत्तर भारत में रामचरित मानस है। दक्षिण में हिन्दुओं की मान्यताएँ सर्वथा भिन्न हैं। संस्कृति के नाम पर होली में गाली बकना, दीपावली में जुआ खेलना और शिवरात्रि पर भाँग पीना धार्मिक कृत्य है। रामचरित मानस में ब्राह्मणवाद का इतना पोषण है कि कहा गया है कि सर्वगुण विहीन ब्राह्मण पूजनीय है न कि सर्वगुण सम्पन्न शूद्र। सब स्मृतियों में मनुस्मृति सर्वाधिक शूद्र द्रोही है। अगर वस्तुतः तुलसीदास और मनु का वही आशय था जो इन्होंने शूद्रों के बारे में लिखा है, तो अगर ये ग्रन्थ न होते तो सम्भवतः हिन्दू धर्म के विशाल साहित्य पर कोई असर न पड़ता। यही हाल पुराणों का है। जहाँ तक परलोक की कल्पना है उसमें भी हिन्दू धर्म में विरोधाभास है। वे स्वर्ग-नरक भी मानते हैं और पुनर्जन्म भी मानते हैं। शिखा सूत्र भी वैकल्पिक है। हिन्दू धर्म की परिभाषा सर्वथा अस्पष्ट है। संक्षेप में हिन्दू धर्म एक अद्भुत विरोधाभास है क्योंकि इसमें मिश्रण है एकेश्वरवाद और बहुदेववाद का, आस्तिकता और नास्तिकता का, अद्वैतवाद और द्वैतवाद का, विष्टिद्वैतवाद और द्वैताद्वैतवाद का, अहिंसा और हिंसा का, पुनर्जन्म और स्वर्ग-नरकवाद का, निराकारवाद और साकारवाद का, पुराणवाद और दर्शनशास्त्र का, प्रवृत्तिवाद और निवृत्तिवाद का, आशावाद और निराशावाद का, कट्टरता और उदारता का, शाकाहारवाद और मांसाहारवाद का। हिन्दुओं का यह विशाल धर्म-साहित्य और विरोधाभास हिन्दू विद्वानों की खोज (Research) की सामग्री भले ही प्रदान करे जैसे डॉ० राधाकृष्णन, बहुत पहुँचे हुए सन्तों को

इससे अध्यात्मवाद ढूँढ़ निकालने की शक्ति हो जैसे स्वामी विवेकानन्द और महान् सुधारकों को इसमें सुधार की कीर्ति का अवसर प्राप्त हो, लेकिन एक विचारशील सामान्य हिन्दू के लिए वर्तमान हिन्दू धर्म में कुछ पल्ले नहीं पड़ता और वह इसी निष्कर्ष पर पहुँचने के लिए बाध्य हो जाता है कि वह केवल गड़बड़झाला (Hotchspotch) और इन्द्रजाल या मन्त्र-तन्त्र (Hocuspocus) ही है जिसका पर्यायवाची ब्राह्मणवाद है, जिसके आधार हैं— सामान्य हिन्दुओं के लिए व्ययशील कर्मकाण्ड और शूद्रों के लिए घोर रूढ़िग्रस्त अपमान जिसका निराकरण 2500 वर्ष पूर्व से बुद्ध और आधुनिक काल तक महात्मा गाँधी न कर सके और अन्तत: डॉ० अम्बेडकर जैसे आधुनिक मनुष्य को हिन्दू धर्म का परित्याग करना पड़ा। वह शूद्र शिरोमणि डॉ० अम्बेडकर जिन्होंने पूना पैक्ट में महात्मा गाँधी के उपवास के फलस्वरूप हरिजनों को दिए गए पृथक् निर्वाचन के अधिकार को त्याग कर हिन्दू जाति पर बड़ा परोपकार किया था। काश डॉक्टर अम्बेडकर हिन्दू धर्म का परित्याग कर बौद्ध धर्म स्वीकार करते समय इस ऐतिहासिक तथ्य को याद कर लिए होते कि बौद्ध धर्म तो भारत में इतना कमज़ोर सिद्ध हुआ कि बुद्ध को हिन्दू धर्म का अवतार मानकर बड़ी चतुराई से ब्राह्मणों ने बौद्ध धर्म की जन्मभूमि भारत से उसको लुप्त कर दिया। अगर डॉक्टर अम्बेडकर समानता के लिए आकांक्षी थे तो उन्हें महात्मा गाँधी के ही शब्द याद रखने चाहिए थे जो उन्होंने अफ्रीका में हब्शियों के ऊपर होने वाले जुल्म के सन्दर्भ में कहे थे कि यदि एक जुलू ईसाई हो जाता है, तो गोरे ईसाई उसे समानता प्रदान नहीं करते और जब वही जुलू इस्लाम स्वीकार कर लेता है, तो उसे तत्काल उच्च श्रेणी के मुसलमान के बराबर पूर्ण समानता प्राप्त हो जाती है।

बौद्ध धर्म

यह विचार अतर्कसंगत नहीं है कि हिन्दू धर्म से भिन्न रूप धारण करने के पूर्व बौद्ध धर्म मूलत: धर्मशास्त्र (Theology) न होकर नीतिशास्त्र (Ethics) था जो बुद्ध की तत्कालीन हिन्दू धर्म अर्थात् ब्राह्मणवाद के अति भ्रष्ट रूप की प्रतिक्रिया थी। उस समय के ब्राह्मण संस्कृत को अपनी धार्मिक भाषा का रूप देकर जन साधारण के शोषण द्वारा लाभ उठा रहे थे। हिन्दू धर्म में यज्ञों की बहुत अधिकता हो गई थी और इनमें बहुत बड़े पैमाने पर जानवरों की हत्या होती थी और बड़े अविवेकपूर्ण ढंग से होती थी। जानवरों की हत्या के अलावा हिन्दू धर्म में खर्चीले कर्मकाण्ड की भरमार हो गई थी, छोटी जातियों के प्रति बड़ी घृणा दिखाई जाती थी। गौतम बुद्ध लड़कपन से ही बड़े दयालु और विचारशील थे और स्वभाव से ही वे अत्याचार विरोधी और सुधारक प्रवृत्ति के थे। उन्हें हर प्रकार का सुख प्राप्त था, लेकिन रोगी, वृद्ध और मुर्दा देखकर उन्हें संसार से वैराग्य हो गया था।

अत: एक दिन उन्होंने घर त्याग दिया। घोर तपस्या के पश्चात् उन्हें ज्ञान प्राप्त हुआ। उन्होंने घोषणा की कि दु:खों का कारण इच्छा है और मुक्ति के लिए उसका त्याग करना अनिवार्य है। ईश्वर के नाम पर अत्यधिक जीव हिंसा और वैदिक धर्म की आड़ में छोटी जातियों पर अत्याचार की प्रतिक्रिया के परिणामस्वरूप उन्होंने अहिंसा और छोटी जातियों के साथ प्रेम पर ज़ोर दिया। उन्होंने अपने नैतिक सिद्धान्तों के प्रचार हेतु बोलचाल की भाषा का सहारा लिया और वेदों को अमान्य कर दिया। उन्होंने प्रतिक्रिया स्वरूप अपने धर्म में ईश्वर को भी कोई स्थान नहीं दिया। यहाँ यह समझ लेना चाहिए कि भले ही बुद्ध की इच्छा केवल हिन्दू धर्म में सुधार की रही हो और इसके लिए उन्होंने नैतिकता का सहारा लिया, किन्तु एक प्रकार से उनकी विचारधाराओं में हिन्दू धर्म की मान्यताओं से मौलिक मतभेद था, अत: बौद्ध धर्म हिन्दू धर्म के विरोध में स्वतन्त्र धर्म के रूप में उदय हुआ। राजा के वंशधर थे ही। व्यक्तित्व का प्रभाव जनता पर पड़ा। नीची जातियों के प्रति सहानुभूति और बोलचाल की भाषा को माध्यम बनाए जाने के कारण शीघ्र ही उनको सफलता मिली और लोग उनके अनुयायी हो गए। उन्होंने अपने धर्म को एक प्रचारक धर्म (Missionary Religion) बनाया। कुछ हिचकिचाहट के बाद उन्होंने औरतों को भी धर्म संघ में प्रचार हेतु स्थान दे दिया। उन्होंने गृहस्थों और भिक्षुओं और भिक्षुणियों के लिए अलग-अलग नियम बनाए। उनके बाद राज्य की संरक्षता पाकर बौद्ध धर्म ख़ूब पनपा। अशोक, कनिष्क और हर्ष ने इसके प्रचार में बड़ा योगदान दिया।

इन सम्राटों के धर्म प्रचार के उत्साह से बौद्ध धर्म भारत के बाहर भी फैला, क्योंकि वहाँ बौद्ध धर्म के मुक़ाबले में कोई अन्य महत्वपूर्ण धर्म नहीं था। कालान्तर से बौद्ध धर्म में इतना भ्रष्टाचार आ गया कि भारत में उसका पतन आरम्भ हो गया। भिक्षुओं और भिक्षुणियों में भ्रष्टाचार और व्यभिचार प्रवेश कर गया। राज्य की संरक्षता समाप्त होते ही अन्य ऐतिहासिक कारणों से बौद्ध धर्म का अपनी जन्मभूमि ही में लोप हो गया। तिब्बत में भी सहसा उसकी समाप्ति हो गई। और जहाँ बौद्ध धर्म जीवित है वह केवल निष्क्रिय रूप में है। उसमें कोई शक्ति नहीं है। भारत में अर्थात् अपनी ही जन्मभूमि में प्रगति की पराकाष्ठा से सर्वथा लोप के परिपेक्ष में बौद्ध धर्म की उपयोगिता का मूल्यांकन किया जा सकता है। जिस मूर्ति पूजा का गौतम बुद्ध ने स्वयं विरोध किया, कालान्तर में उनके अनुयायियों ने उनको ही ईश्वर मानकर मूर्ति के रूप में पूजना शुरू कर दिया। जिन अन्धविश्वासों के विरुद्ध बुद्ध ने अभियान चलाया वे हिन्दू धर्म से भी अधिक बौद्धों के महायान सम्प्रदाय में और तिब्बत के लामावाद में प्रवेश कर गए। बौद्ध धर्म के जो आकर्षक नैतिक सिद्धान्त थे जैसे अहिंसा आदि उन्हें हिन्दू धर्म में समाविष्ट करके ब्राह्मणों द्वारा चतुराई से बुद्ध को अपने धर्म में अवतार का स्थान देकर भारत से बौद्ध धर्म को बड़ी सफाई से समाप्त कर दिया गया।[1]

इतिहास में अगर अल्प समय में इस्लाम का विश्वव्यापी धर्म बन जाना एक चमत्कार है, तो अपनी जन्मभूमि में बौद्ध धर्म का सहसा पतन हो जाना दूसरा चमत्कार है। बौद्ध धर्म की आधारशिला वृद्धावस्था, रोग और मृत्यु का भय था, न कि ईश्वर भय। बिना नींव के निर्मित भवन जिस प्रकार दिवास्वप्न है उसी प्रकार किसी भी धर्म का संस्थापन ईश्वर के आधार के बिना व्यर्थ हो जाता है, बौद्ध धर्म के दस शील, अहिंसा, सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य, अपरिग्रह (सम्पत्ति त्याग), संगीत और नृत्य का त्याग, अंजन, फल और सुगन्धित द्रव्यों का त्याग, असामयिक भोजन का त्याग, कोमल शय्या का त्याग और कामिनी कंचन का त्याग[2] अति कठोर और अमनोवैज्ञानिक (कुछ को छोड़कर) सिद्ध हुए और इनमें निहित नैतिकता बौद्ध धर्म के अनीश्वववाद के कारण व्यर्थ हो गई। कारण स्पष्ट है कि नैतिकता का क्रियान्वयन, बिना ईश्वर के भय के असम्भव और कोरी बकवास है। अनीश्वरवादी और निराशावादी

---

1. इसी के साथ यह भी हुआ कि शंकराचार्य ने बौद्ध धर्म के विरुद्ध आन्दोलन चलाकर भारत से उसका उन्मूलन कर दिया।

2. ऐसे सिद्धान्त, जिनमें जीवनपर्यन्त ब्रह्मचर्य की शिक्षा दी गई हो, पर आधारित धर्म मानव प्रकृति के विरुद्ध है। उसमें ईश्वर-विश्वास हो, जब भी वह सर्व मानव धर्म नहीं हो सकता और न स्थिर रह सकता है और न इन सिद्धान्तों का निर्वाह सम्भव है।

धर्म व्यक्ति और सृष्टि के कल्याण में कहाँ तक सहायक हो सकता है, सामान्य बुद्धि से भी इसकी समीक्षा की जा सकती है। मानव और मानवजाति के लिए जीवन संग्राम (Struggle for Existence) अवश्यम्भावी है और योग्यतम का अति जीवन (Survival of the fittest) एक वैज्ञानिक तथ्य है। बिहार का तत्कालीन बौद्ध राजा, बखतियार ख़िलजी के केवल चन्द सिपाहियों के साथ आगमन को सुनकर नंगे पैर राजधानी से भागा। इसी प्रकार चीन के अभियान के समय तिब्बत द्वारा तनिक भी प्रतिरोध न करना जीवन संग्राम में बौद्ध धर्म की असमर्थता का ऐतिहासिक प्रमाण है। अनीश्वरवाद और निराशावाद (Atheism and Pessimism) मानवता के लिए कदापि कल्याणकारी नहीं हैं न तो नैतिकता के प्रयोजनार्थ और न तो जीवन संग्राम में सफलता हेतु।[1]

---

1. विचारपूर्वक देखिए तो बौद्ध धर्म, धर्म की श्रेणी में आता ही नहीं। धर्म का मूलाधार ईश्वर तथा ईश्वर-प्रदत्त ज्ञान विश्वास है। बुद्ध जी हिन्दू जाति के थे परन्तु उन्होंने ईश्वर और वेदों को मानने से इनकार कर दिया। अत: ईश्वर और वेदों का इनकार उनके धर्म का मूलाधार है। फिर उनकी तपस्या और ध्यान का क्या अर्थ है और उनको तपस्या और ध्यान द्वारा जो ज्ञान प्राप्त हुआ वह कहाँ से और किससे प्राप्त हुआ? ज्ञान का स्रोत तो ईश्वर ही है और ईश्वर की उपासना-भक्ति की शिक्षा लौकिक जीवन के कल्याण और मोक्ष का साधन है और वही बुद्ध जी की शिक्षा में नहीं है।

   बौद्ध धर्म की मूल शिक्षा संसार का त्याग और ब्रह्मचर्य है, इस शिक्षा के अनुसार सृष्टि ही निरर्थक हो जाती है। ऐसा धर्म व्यापक मानव-धर्म नहीं हो सकता। पूर्ण मानव-धर्म वही धर्म हो सकता है जो पूर्ण मानव-जीवन का विधान हो, उसमें लौकिक जीवन के नियम भी हों और पारलौकिक शिक्षा भी हो तथा दोनों प्रकार की शिक्षाओं में परस्पर सन्तुलन हो। बौद्ध धर्म एक प्रकार का मत है। बुद्ध जी एक सुहृदय व्यक्ति थे, उनके समय में धर्म का दुरुपयोग हो रहा था। बाह्य आडम्बरों का बोलबाला था, सदाचार और नैतिकता का ह्रास हो गया था, यह सब कुछ धर्म के रूप में हो रहा था तथा धार्मिक वर्ग का भी यही जीवन था। जब देवदासियों के रूप में युवतियों का देव मन्दिरों पर भेंट चढ़ाना, उनका नाचना-गाना, उत्तम कोटि के भोजनों का चढ़ावा, गाँजा-भाँग आदि मादक वस्तुओं का सेवन धार्मिक कृत्यों के अंग बन जाएँ तो धर्म की शुद्धता और पवित्रता कहाँ? इसके साथ यज्ञों और पशुओं की हिंसा की अधिकता। इस अवस्था ने बुद्ध जी को धर्म विरोधी बना दिया।

   बुद्धजी को अनुभव हुआ कि धर्म में भौतिकता का प्रवेश हो गया, उन्होंने अध्यात्म को अपने मत का आश्रय बनाया तथा संसार-त्याग, ब्रह्मचर्य, सहृदयता, प्रेम, नम्रता, स्नेह का प्रचार आरम्भ किया। समाज पर इसका बड़ा प्रभाव हुआ। बौद्ध धर्म भारत से बाहर निकला तो अन्य देशों में भी इसका स्वागत हुआ, परन्तु वह सभी देश बहुदेववादी थे। बौद्ध मत उनकी मान्यताओं और धारणाओं से समझौता करता गया। परिणामस्वरूप स्वयं भी धर्म प्रवर्तक गौतम बुद्ध जी को बुद्धदेव बनाकर उसका पूजक बन गया। ब्रह्मचर्य तथा भिक्षु और भिक्षुणियों के मेल-मिलाप का भी वही परिणाम हुआ जो देवदासियों और देव-पूजकों के मेल-मिलाप का हुआ था। इससे भी बौद्ध धर्म की मर्यादा को धक्का लगा। तत्पश्चात् शंकराचार्य जी ने आन्दोलन करके बौद्ध धर्म को भारत से निकाल दिया और बौद्ध विहारों को भी नष्ट-भ्रष्ट कर दिया, परन्तु बदनाम किए जाते हैं मुसलमान बादशाह।

(शेष फुटनोट अगले पृष्ठ पर)

(पिछले पृष्ठ के फुटनोट का शेष)

बौद्ध धर्म में और भी त्रुटियाँ हैं। जब बुद्ध जी ईश्वर को नहीं मानते थे तो पहला प्रश्न यह उठता है कि सृष्टि की उत्पत्ति को कैसे और किसके द्वारा मानते थे? दूसरा प्रश्न यह कि बुद्ध जी की तपस्या का क्या अर्थ? तपस्या का सम्बन्ध तो ईश्वर ही से होता है। तीसरा प्रश्न यह कि ईश्वर ही तो ज्ञान का स्रोत है, जब बुद्ध जी ईश्वर को नहीं मानते थे तो उनके ज्ञान का आधार क्या था, उनको किसके द्वारा कैसे ज्ञान प्राप्त हुआ? जिन दृश्यों से प्रभावित होकर उन्होंने सांसारिक सुखों का त्याग किया था उन्हीं के अनुसा^ उन्होंने कुछ नियम निश्चित कर दिए जो सर्वथा त्याग पर आधारित हैं। इस प्रकार का धर्म न पूर्ण जीवन-धर्म हो सकता है और न जीवन चल सकता है। चौथा प्रश्न यह है कि बौद्ध धर्म के अनुसार शरीर के साथ जीव भी मर जाता है और कर्म फल के अनुसार दूसरा शरीर उत्पन्न होता है। ऐसी अवस्था में निर्वास या मोक्ष का क्या अर्थ है? यदि इतना हो कि मनुष्य फिर उत्पन्न नहीं होता, तो मनुष्य की सृष्टि ही निष्फल है।

ईसाई धर्म

ईसाई धर्म का आधार हज़रत ईसा के द्वारा बाइबिल के रूप में अवतरित ईश्वरीय ज्ञान था। आवश्यकता का परिणाम अवश्यम्भावी है। यहूदियों की धर्म पुस्तक में मिलावट और क्षेपकों का प्रवेश हो गया था और हज़रत मूसा के उपदेशों से यहूदी बहुत पीछे हट गए थे। इन बुराइयों को दूर करने के लिए हज़रत ईसा ईश्वरदूत के रूप में आए। संसार को बाइबिल, तौरेत के संशोधन के रूप में प्राप्त हुई। संसार के कल्याण के लिए ईसा ने अद्भुत आत्म बलिदान दिया। यद्यपि ईसा मसीह को अपने जीवन काल में वांछित सफलता नहीं मिली, तथापि उनके बाद ईसाई धर्म विश्व-धर्म के रूप में प्रतिष्ठित हो गया। उनका जन्म कुमारी मरियम से हुआ। इसको ईश्वर के चमत्कार में विश्वास करनेवाला युक्तिपूर्ण कथन (Rationale) मानते हैं और मानना चाहिए।

प्रथम मानव-उत्पत्ति विज्ञान के लिए रहस्य है। इसी प्रकार प्रथम बीज अथवा प्रथम फल का प्रश्न विज्ञान के लिए रहस्य और धार्मिकों के लिए ईश्वर-कृति है। प्राचीनतम हिन्दू धर्म भी इसी प्रकार की उत्पत्ति का अनुमोदन करता है। शंकर स्वयंभू अर्थात् बिना माता-पिता के थे, किन्तु उनके दो पुत्र कार्तिकेय और गणेश थे। राम की पत्नी का जन्म भी इसी प्रकार का है जिन्हें जनक ने भूमि के अन्दर से प्राप्त किया था। कुन्ती, जो कृष्ण की सम्बन्धिनी थी, कुमारी अवस्था में ही उसे कर्ण नामक पुत्र की प्राप्ति हुई थी। ये सब उत्पत्तियाँ हिन्दू धर्म में पवित्र हैं। ईसा मसीह के निस्सन्देह ईश्वरदूत होते हुए भी ईसाई धर्म में दोषों का प्रवेश हो गया। ईसाइयत की त्रिमूर्ति—ईश्वर, पुत्र और आत्मा; हिन्दुओं की त्रिमूर्ति —ब्रह्मा, विष्णु और महेश से अधिक दोषपूर्ण है। हिन्दुओं की यह त्रिमूर्ति वास्तव में मूलतः ईश्वर के ही गुणवाचक नाम थे। ब्रह्मा (Creator) अर्थात् सृष्टि को उत्पन्न करनेवाला, विष्णु (Protector) अर्थात् सृष्टि का पालनहार और महेश (Destroyer) अर्थात् सृष्टि का नाश व संहार करनेवाला। कालान्तर में जब जैनियों के संसर्ग से हिन्दुओं में मूर्तिपूजा का प्रवेश हो गया तो इन तीनों को साकार रूप दे दिया गया, जबकि मूलतः वे निराकार ईश्वर के गुणवाचक नाम थे। लेकिन ईसाइयों की त्रिमूर्ति निराकार ईश्वर के गुणवाचक नाम न होकर स्वतन्त्र अस्तित्व रखती हैं। ईसा की ईश्वर पुत्र के रूप में कल्पना पौराणिक हिन्दू धर्म के अवतारवाद की कल्पना ही के समान है। इसी कल्पना और विश्वास से ईसाइयत एकेश्वरवाद से भटक गई और उसमें इसी के परिणामस्वरूप हिन्दू धर्म के ऐसे अन्धविश्वास और मूर्तिपूजा के दोष प्रवेश

कर गए। कालान्तर में मरियम की पूजा तक ईसाइयत में आ गई और केवल ईसा में विश्वास और पश्चात्ताप पर अत्यधिक ज़ोर तथा मृत्यु के पूर्व ईसाई पादरी के समक्ष पाप की स्वीकृति मोक्ष का साधन मान ली गई। पौराणिक हिन्दू धर्म की तरह ईसाई धर्म में ईश्वर को प्रमुख (Primary) से गौण (Secondary) बना दिया गया। ईसाइयत में नैतिकता के लिए बहुत कम योगदान है। यूरोप और अमेरिका में शराबख़ोरी, जूआ और व्यभिचार[1] चरम सीमा में प्रचलित हैं। अफ़्रीका में काले-गोरे का भेद और गोरे ईसाइयों का काले ईसाइयों पर अत्याचार, हिन्दुओं के शूद्रों पर अत्याचार के ही समान है। स्पष्ट है कि हिन्दूधर्म की भाँति ईसाई धर्म में भी समाजवादी दृष्टिकोण एवं समानता व भाईचारे (Equality and Fraternity) की भावना उत्पन्न करने की क्षमता और शक्ति नहीं रही, अतः ईश्वर ने पूर्व के धर्मों में प्रविष्ट दोषों की समाप्ति एवं जन कल्याण के लिए अन्तिम ईश्वरदूत हज़रत मुहम्मद को संसार में भेजा ताकि क़ुरआन के अन्तिम ईश्वरीय आदेशों द्वारा संसार की समस्त बुराइयाँ और कमज़ोरियाँ सदा सर्वदा के लिए समाप्त हो जाएँ।

---

1. और अब तो समलैंगिक यौन सम्बन्ध (Homo Sexuality and Lesbianism) और समलैंगिक विवाह भी वैध माने जाने लगे हैं।

(प्रकाशक)

इस्लाम धर्म

इस्लाम के मूल्यांकन के लिए पहले हज़रत मुहम्मद के व्यक्तित्व का मूल्यांकन आवश्यक है, जिनके द्वारा ईश्वरीय निर्देश क़ुरआन के रूप में अन्तिम रूप से प्रकट हुए। राम, बुद्ध और महावीर के विपरीत मुहम्मद का जन्म राजपरिवार में नहीं हुआ। न तो उनके पैदा होने पर उत्सव मनाया गया और न तो उनका लालन-पालन सुख से हुआ और न तो उनकी शिक्षा-दीक्षा की कोई व्यवस्था हो सकी। अभी वे गर्भावस्था ही में थे कि उनके पिता का देहान्त हो गया। 6 वर्ष की आयु में माता से भी वंचित हो गए। 8 वर्ष के हुए तो दादा भी चल बसे। केवल एक चाचा अबू तालिब ने आपके प्रति सहानुभूति और दया दिखाई। इस प्रकार शिक्षा-दीक्षा और सुख-शान्ति के वातावरण से आप वंचित रहे। चालीस वर्ष की आयु तक निरन्तर ईमानदारी, सच्चाई तथा सदाचार का जीवन व्यतीत करते हुए आप 'अमीन' (अमानतदार) कहलाते रहे। आरम्भ से लेकर पैग़म्बरी प्राप्त होने तक और तत्पश्चात् इस्लाम को संसार में पूर्ण रूपेण प्रतिष्ठित करने के बाद परलोकवास तक अशिक्षित रहे। चालीस वर्ष की आयु में आपको ईश्वरीय ज्ञान प्राप्त हुआ। सर्वप्रथम उनकी पत्नी ख़दीजा और तत्पश्चात् आपके चाचा के नवयुवक पुत्र अली, दास (ग़ुलाम) ज़ैद और मित्र अबू बक्र ने आपकी प्रेरणा से इस्लाम ग्रहण किया और इसके बाद आपके निकटवर्ती इस्लाम ग्रहण करते रहे। साथ ही विधर्मी विरोध भी करने लगे जिनकी संख्या दिनों दिन बढ़ती ही गई। जब वह तत्कालीन राज्य सत्ता और नाना प्रकार के अन्य प्रलोभनों से आपको सत्य से न डिगा सके तो उन्होंने उनपर और उनके अनुयाइयों पर बड़े अत्याचार किए यहाँ तक कि उनके अनुयाइयों को स्वदेश छोड़कर हब्श देश (इथोपिया) में शरण लेनी पड़ी। वहाँ भी उनके शत्रु क़ुरैश[1] ने उनका पीछा किया लेकिन वहाँ के शासक[2] ने इस्लाम की सत्यता से प्रभावित होकर उन मुसलमान शरणार्थियों को क़ुरैश के हवाले करने से इनकार कर दिया।

---

1. क़ुरैश—अरब का एक प्रसिद्ध और प्रतिष्ठा प्राप्त क़बीला। अल्लाह के पैग़म्बर हज़रत मुहम्मद (सल्ल०) इसी क़बीले में पैदा हुए। अरब के समस्त ख़ानदानों व क़बीलों से बढ़कर इस क़बीले ने अपनी सामाजिक महत्ता और बहुदेववादी धार्मिक प्रभुत्व के लिए इस्लाम को ख़तरनाक समझा। इसी लिए इस क़बीले ने सबसे बढ़-चढ़कर इस्लाम का विरोध किया और दूसरे क़बीलों को अपने साथ एकजुट किया।
2. हब्श का शासक—'नज्जाशी' की उपाधि से प्रसिद्ध, धर्म से ईसाई। (प्रकाशक)

इधर मक्का में मुहम्मद साहब और उनके अनुयाइयों पर अत्याचार चरम सीमा को पार कर गया और मुहम्मद साहब का प्राण तक लेने का षड्यन्त्र रचा गया। ईश्वरीय प्रेरणा से उन्हें मक्का से मदीना चला जाना पड़ा। इस घटना को इस्लामी भाषा में हिजरत कहते हैं। अर्थात् धर्म के लिए देश-त्याग। लेकिन वहाँ भी क़ुरैश ने चैन न लेने दिया और मदीना पर सशस्त्र आक्रमण आरम्भ कर दिया तो क़ुरआन में पैग़म्बर और मुसलमानों के लिए प्रतिरक्षात्मक युद्ध अर्थात् जिहाद की अनुमति के लिए आयतें अवतरित हुईं। अन्त में अति अल्प अवधि, हिजरत के लगभग 9 वर्ष के अन्दर ही सारे अरब पर मुहम्मद तथा इस्लाम का अधिपत्य हो गया। दूसरे शब्दों में वह अरब जाति जो प्राय: सामूहिक रूप से हर प्रकार की बुराइयों में लिप्त थी, जैसे अशिक्षा, उच्छृंखलता, अन्धविश्वास, जुआ, लूट, व्यभिचार यहाँ तक कि पिता की मृत्यु के बाद सौतेली माँ से विवाह आदि, मदिरापान, झगड़ा-फ़साद, कन्यावध, धोखाधड़ी, ज़ुल्म, षड्यन्त्र, स्त्रियों के साथ दुर्व्यवहार, ग़ुलामों पर अत्याचार, अनाथों का हक़ मारना, मूर्तिपूजा और अन्य प्रकार के अपराध करनेवाली क़ौम पैग़म्बर साहब के जीवन ही में इस्लाम के 20 वर्ष के प्रचार के फलस्वरूप उसी पीढ़ी में ही एक ईश्वरवादी एवं धर्मात्मा क़ौम बन गई। अन्य धर्मों की पुस्तकों में ऐसी भ्रष्ट और पापी क़ौम का राक्षस नाम देकर किसी देवता या अवतार के माध्यम से नाश और वध दर्शाया गया होता, लेकिन इस ऐतिहासिक चमत्कार में मुहम्मद साहब ने पापियों का नाश न करके पाप का नाश किया। इस प्रकार "दुराचारी से घृणा न करो, बल्कि उसके दुराचार से घृणा करो" कहावत को इस्लाम द्वारा पैग़म्बर ने साकार कर दिखाया। संक्षेप में दीर्घस्थायी (Chronic) अपराध प्रवृत्तिरूपी रोग से ग्रस्त अरब जाति बहुत जल्द स्वस्थ हो गई। सामूहिक अपराध प्रवृत्तिरूपी रोग का मुहम्मद साहब ने सफलता पूर्वक निदान किया। इसे ऐतिहासिक चमत्कार ही कहना चाहिए कि अरब जाति का यह रोग उसी जाति में उत्पन्न वैद्य द्वारा समाप्त हुआ जो पैदा तो उस अपराध प्रवृत्त क़ौम में हुआ, लेकिन मनसा, वाचा और कर्मणा उस क़ौम से सर्वथा भिन्न था। स्पष्ट है कि इस्लाम नैतिकता की तेजवर्धक औषधि (Elixir) है जो इस प्रकार के रोग से ग्रस्त किसी अन्य जाति का भी सफल और त्वरित उपचार करने में एक प्रयुक्त (Tested) और सर्वसत्व संरक्षित (Registered and patent) औषधि के रूप में सक्षम और समर्थ है। इस्लाम के पूर्व की अरब जाति का इस्लाम द्वारा जो काया कल्प हुआ वह उसका मानो ऐतिहासिक पुनर्जन्म है। वैसे तो पुनर्जन्म की कल्पना कोरी कल्पना ही है। सबसे महान् आश्चर्य का विषय तो यह है कि मुहम्मद साहब के नेतृत्व में मक्का विजय के समय एक भी व्यक्ति की जान नहीं गई और पैग़म्बर एवं उनके अनुयाइयों ने अपने शत्रुओं के कर्मों का बदला लिए बिना उन्हें छोड़ दिया। इतिहास में युद्धोपरान्त

विजेताओं द्वारा विजितों को ऐसे सामूहिक क्षमादान का कोई उदाहरण नहीं मिलता। इसके विपरीत अन्य धार्मिक पुराणों की गाथाओं में अवतारों और देवताओं द्वारा विरोधियों का रोमांचकारी संहार वर्णित है। इस्लाम के शुद्ध प्रकाश से परिपूर्ण होकर अरब न केवल स्वयं अन्धकार से निकले, बल्कि एक सदी के अन्दर विद्युत-गति से उन्होंने संसार के विस्तृत भू-भाग को भी इस्लाम की चकाचौंध करनेवाली रोशनी से रोशन कर दिया। मुहम्मद साहब की सादगी में न तो धनी पत्नी के विवाह के बाद कोई अन्तर आया और न पैग़म्बर का पद प्राप्त करने और अरब के सर्वेसर्वा होने के बाद। उन्होंने अपना सारा जीवन अत्यन्त सादगी से बिताया। वे किसी भेदभाव के बिना सभी धर्म और जातिवालों के परोपकारक थे। वे इतने दानशील थे कि क़र्ज़ लेकर भी दूसरों की आवश्यकताएँ पूरी करते थे। उनमें कोई भी नैतिक दोष नहीं था। वे साक्षात् (Personified) सत्यता, ईमानदारी, पवित्रता, दया, सौजन्य और शान्ति के दूत एवं उदारता और दयालुता के प्रतीक थे। केवल दूसरों के लिए जीवित रहने के लिए जीवन व्यतीत किया। सर्वोपरि, उनका पुण्य असीम था। श्रम के गौरव के लिए और दूसरों में समानता और भाईचारा और सहयोग की भावना जागृत करने के लिए उन्होंने युद्ध और शान्ति किसी अवस्था में ऐसा कोई कार्य न किया जिससे लोग उन्हें प्रमुख समझें। वह युद्ध और शान्ति में आश्चर्यजनक रूप से नम्र, उदार और क्षमाशील थे। दैनिक गृहस्थ जीवन बिताते हुए भी सर्वदा ईश्वर का चिन्तन करते रहते थे और सबके लिए, यहाँ तक कि अपने विरोधियों के लिए भी ईश्वर से कल्याण की प्रार्थना करते थे। रात को उठ-उठकर नमाज़ पढ़ते थे। एक बार हज़रत आइशा को, जो उनकी पत्नी थीं, रात के समय भ्रम हुआ कि शायद वे दूसरी पत्नी के यहाँ गए हुए हैं, लेकिन उन्हें उस समय बड़ा पश्चात्ताप हुआ जब उन्होंने उठकर देखा कि उनका पवित्र मस्तक ईश्वर की आराधना में भूमि पर नत है। उन्होंने अपने को ईश्वर के लिए समर्पित कर दिया था और उनका ईश्वर पर अटूट विश्वास था। वे तुच्छ से तुच्छ वस्तु के लिए भी ईश्वर पर निर्भर रहते थे। इस प्रकार उनका ईश्वर समर्पित पवित्र गृहस्थ जीवन वास्तविक योग और वैराग्य था। "पानी में कमल का पत्ता" तुल्य उनका जीवन था। यह सच्ची तपस्या भी थी। उनकी पैग़म्बरी का प्रमाण उनकी अपूर्व सफलता तथा इस्लाम धर्म की संसारव्यापी प्रतिष्ठा है। यह बात भी प्रमाणित है कि प्रारम्भ में सांसारिक शिक्षा के अभाव में स्वयं ईश्वर ने उन्हें क़ुरआन रूपी असीम ज्ञान से विभूषित किया। मुहम्मद साहब और इस्लाम की महत्ता और क्रान्तिकारी प्रभाव की पुष्टि ऐतिहासिक प्रमाणों से भी होती है। पूर्वाग्रही और दुराग्रही उमर (जो आगे चलकर हज़रत उमर कहलाए और हज़रत मुहम्मद साहब के दूसरे प्रभावी ख़लीफ़ा हुए) नंगी तलवार लेकर मुहम्मद साहब को जान से मारने के वास्ते घर से चले थे,

क़ुरआन के कुछ उद्धरणों को सुनकर तत्काल उनका हृदय-परिवर्तन हो गया और उन्होंने तुरन्त मुहम्मद साहब की सेवा में उपस्थित होकर इस्लाम ग्रहण कर लिया। यही हाल तुफ़ैल बिन उमर दोसी का हुआ जो मुहम्मद साहब की उक्ति से बचने के लिए कान में रूई रख लेते थे। मुहम्मद साहब से क़ुरआन की कुछ आयतें सुनते हैं और तत्काल मुसलमान हो जाते हैं। साधनहीन और अनाथ के रूप में पले, जीवनपर्यन्त सांसारिक शिक्षा से वंचित, किन्तु ईश्वरीय ज्ञान से विभूषित, अत्याचारों को सहते हुए अत्याचारियों के लिए भी दुआ मांगते हुए और अपरिहार्य परिस्थिति में ईश्वरीय आदेश से प्रतिरक्षात्मक युद्ध करते हुए पूर्ण विजय प्राप्ति के बाद अपने ऊपर और अपने अनुयाइयों पर घोर अत्याचार ढानेवालों को सामूहिक क्षमादान से और अपने जीवन काल ही में राक्षस कहलाने लायक अरबों को पुण्यात्मा बना देने से और उनके बाद एक सदी के अन्दर संसार के विशाल भू-भाग पर इस्लाम के प्रतिष्ठित हो जाने से और आज सर्वाधिक लोकप्रिय विश्वव्यापी धर्म होने से मुहम्मद साहब और इस्लाम की शक्ति स्वयंसिद्ध है। अत्याचारों को सहते हुए धैर्य के साथ ईश्वरीय शक्ति के द्वारा प्रगति करते रहे और घोर संघर्षों के बीच सफल हुए। उनका ध्येय था सत्य-धर्म के रूप में 'इस्लाम'। यदि वैज्ञानिक सिद्धान्त जीवन-संग्राम (Struggle of Existence) और 'योग्यतम का अति जीवन' (Survival of the fittest) सही हैं, और ये सिद्धान्त वस्तुतः वैज्ञानिक होने से सही हैं, तो व्यक्ति और ईश्वर-दूत के रूप में मुहम्मद साहब और धर्म के रूप में इस्लाम ही इन सिद्धान्तों पर खरे उतरते हैं। पैग़म्बर की महान् उपलब्धि यह है कि संघर्ष में भी उन्होंने नैतिकता का लेशमात्र परित्याग नहीं किया। राम ने बालि के वध में पीछे से पेड़ की आड़ से तीर चलाकर और रावण के वध में रावण के भाई विभीषण का, रावण की नाभि में अमृत का रहस्य जानने में उनका सहयोग लेकर राजनीति का परिचय दिया। इसी प्रकार कृष्ण ने द्रोणाचार्य के वध में अश्वत्थामा नामक हाथी को मरवाकर युधिष्ठिर द्वारा ज़ोर से "नर" और धीरे से "हाथी" कहलाकर द्रोणाचार्य को अपने पुत्र अश्वत्थामा की तथाकथित मृत्यु से घबड़ाकर निहत्था हो जाने पर वध कराकर और द्रोणाचार्य की ही तरह जयद्रथ वध के लिए संध्या न रहने पर भी संध्या का मायाजाल रचकर राजनीति का परिचय दिया। लेकिन इसके विपरीत मुहम्मद साहब ने बद्र की जंग में जबकि उनके पास सैनिकों का अत्यधिक अभाव था,[1] दो सैनिकों की सेवा लेने से उनके अनुनय विनय के बावजूद

---

1. इस्लामी सैनिकों की संख्या लगभग 313 और शत्रु सैनिकों की संख्या लगभग 1000 थी। इस्लामी सेना में सामरिक साधनों, हथियारों का बिलकुल अभाव था, जबकि इस्लाम विरोधी सेना सामरिक साधनों और हथियारों से पूरी तरह लैस थी।

(प्रकाशक)

इनकार कर दिया, जब उन्हें मालूम हुआ कि इन लोगों ने विरोधियों द्वारा पकड़े जाने पर अपनी छूट के लिए वचन दिया था कि हम मुहम्मद की तरफ़ से न लड़ेंगे। यह मुहम्मद साहब की अद्भुत नैतिकता थी और वे "अच्छे साध्य के लिए अच्छा साधन" सिद्धान्त के प्रतीक थे। मक्का विजय के बाद मुहम्मद साहब ने उस आततायी को भी क्षमा कर दिया था जिसने उनकी एक कन्या को ऊँट से गिराकर अति कष्ट पहुँचाया था। इतिहास इस प्रकार की क्षमाशीलता का उदाहरण प्रस्तुत नहीं कर सकता। निस्सन्देह हज़रत मुहम्मद ईश्वर-दूतों में सर्वश्रेष्ठ हैं। "इस्लाम" अपने नाम से ही महत्वपूर्ण और अर्थपूर्ण है। इस्लाम का शाब्दिक अर्थ है— "ईश्वर की इच्छा के आगे पूर्णरूप से नत-मस्तक हो जाना।" अर्थात् पूर्णरूपेण ईश्वर का आज्ञाकारी भक्त बन जाना। इस प्रकार प्रारम्भ ही में इस्लाम एकेश्वरवाद का सूचक हो जाता है। इस्लाम मोहम्मडन-इज़्म नहीं है[1] वरन् ईश्वर प्रदत्त आदि धर्म है। मुहम्मद साहब अन्तिम ईश्वरदूत थे। यह इस्लाम नाम से ही सिद्ध है। इसके विपरीत हिन्दू धर्म का कोई मुख्य ठोस अर्थ नहीं है। बौद्ध धर्म और ईसाई धर्म केवल संस्थापकों से सम्बन्ध को सूचित करते हैं और व्यापकता का दिग्दर्शन नहीं कराते। किसी भी धर्म के पुष्टिकरण या खण्डन से मुक्त हैं। इसके विपरीत इस्लाम संसार के भूभागों में मुहम्मद साहब से पहले भेजे हुए समस्त ईश्वर-दूतों के प्रति आदर प्रकट करता है। उसकी मान्यता है कि सब धर्म मूलत: एक ही थे।[2] कालान्तर में जब इसमें मिश्रणों और क्षेपकों का प्रवेश हो गया और वास्तविक ईश्वरीय निर्देशों से लोग भटक गए तो ईश्वर ने अन्तिम रूप से मुहम्मद साहब द्वारा क़ुरआन को अवतरित किया। ला इला-ह इल-लल-लाहु मुहम्मदुर-रसूलुल-लाहु" इस्लाम धर्म का कलिमा है जिसको इसी पुस्तिका की भूमिका में ज्यामिति के प्रमेय (Geometrical Theorem) के रूप में सिद्ध किया जा चुका है। इस्लाम के पाँच अध्यादेश हैं— (1) तौहीद अर्थात् एकेश्वरवाद (2) नमाज़ अर्थात् दैहिक उपासना एवं प्रार्थना (3) ज़कात अर्थात अनिवार्य धर्म दान (4) रोज़ा अर्थात् साल में पूरे रमज़ान मास का अनिवार्य व्रत और (5) हज अर्थात् काबा की तीर्थयात्रा।

---

1. जैसाकि दुराग्रही ईसाईजगत ने इस्लाम की व्यापकता व सार्वभौमिकता के असीम गुण को सीमित करने तथा एक आदिकालीन ईश्वरीय धर्म को एक सामयिक व्यक्तित्व 'मुहम्मद साहब' तक संकुचित करने के लिए "मुहम्मडन-इज़्म" का पारिभाषिक शब्द (Terminology) प्रचलित कर दिया, मानो इस्लाम एक धर्म नहीं, एक मानव-आविष्कृत विचारधारा (Ism) है, जैसाकि हज़रत ईसा के प्रचारित धर्म को "ईसाई धर्म" का नाम देकर एक 'मानव-आविष्कृत धर्म' के रूप में प्रसिद्ध व प्रचलित कर दिया। (प्रकाशक)
2. मूल धर्म हर काल में, हर रसूल द्वारा प्रचारित व प्रसारित, इस्लाम (ईश्वरीय आज्ञापालन) ही रहा है, यह तो हो सकता है कि उस काल और समकालीन मानवजाति की भाषा में उसका नाम कुछ और रहा हो। उसका आधार सदा 'एकेश्वरवाद, ईशदूतवाद व परलोकवाद' पर ही रहा है तथा उसमें सदा परमेश्वर (अल्लाह) के समक्ष 'पूर्ण समर्पण' का अर्थ निहित रहा है। (प्रकाशक)

बौद्ध धर्म के अनीश्वरवादी होने की अवस्था में एकेश्वरवाद का उसमें कोई स्थान ही नहीं है और अन्य के लिए स्पष्ट अध्यादेशों के रूप में तो बिलकुल ही ये नियम प्राप्त नहीं हैं, भले ही अप्रत्यक्ष रूप से नैतिक आदर्शों के रूप में यत्र-तत्र उन्हें तोड़-मरोड़ का सहारा लेकर ढूँढ़ा जाए। यही अवस्था न्यूनाधिक ईसाइयत की है। ईश्वर के पुत्र के रूप में ईसा की मान्यता से एकेश्वरवाद ईसाइयों में खण्डित हो चुका है। इस्लाम के ये पाँचों अध्यादेश प्राचीनतम हिन्दू धर्म में पाए जाते हैं। भले ही उसमें ये नियम बिखरे हों, जटिल बना दिए गए हों, या अन्य ढंग से उनपर आवरण पड़ गया हो। इस्लाम में इन नियमों का संक्षिप्तीकरण, नियमितीकरण, सरलीकरण और विशेष परिस्थिति में छूट भी दे दी गई है। जहाँ हिन्दुत्व में इन पाँचों नियमों का वैयक्तिक (Individual) पहलू है वहाँ इस्लाम में इन्हें सामाजिक आवरण प्रदान कर दिया गया है। इस प्रकार इस्लाम में परिमार्जित रूप में ये नियम इस धर्म को सरलता, सर्वग्राह्यता, सार्वभौमिकता और समाजवादी दृष्टिकोण प्रदान करके सर्वोत्तम धर्म के रूप में प्रतिष्ठित करते हैं। प्राचीनतम वैदिक साहित्य ने मानव सभ्यता के प्रारम्भ ही में एकेश्वरवाद की घोषणा 'एकमेव द्वितीयो नास्ति' के रूप में की, अर्थात् ईश्वर एक है और दूसरा नहीं है। कृष्ण की गीता में ईश्वर को 'जोतिषाम् पितज्ज्योतिः' अर्थात् रोशनी की रोशनी कहा गया है। ईश्वर की यह विशेषता वही है जिसे क़ुरआन में 'नूरुल-अला-नूर' (24:35) कहा गया है। उपनिषदों में बार-बार कहा गया है कि 'तमसो मा ज्योतिर्गमय' अर्थात् हमें अन्धकार से प्रकाश में ले आओ। पैग़म्बर साहब की भी यही विशेष दुआ थी।[1] ईश्वर को गीता में 'विश्वतोमुखम्' कहा गया है अर्थात् ईश्वर का चारों ओर मुँह है। क़ुरआन में भी कहा गया है कि जिधर भी मुड़ो उधर ही ईश्वर है। (2:115) गीता ईश्वर को 'सर्वलोकमहेश्वरम्' घोषित करती है अर्थात् ईश्वर सब लोकों का मालिक है। क़ुरआन में हू-ब-हू यही शब्द ईश्वर के लिए 'रब्बुल आलमीन' (1:1) है। गीता में ईश्वर को 'सत्य' कहा गया है। क़ुरआन में भी ईश्वर को 'हक़' (22:62) कहा गया है। गीता और क़ुरआन दोनों में ईश्वर के लिए कहा गया है कि उसके समान कोई नहीं है। (42:11) गीता और उपनिषद् में कहा गया है कि सारा ब्रह्माण्ड ईश्वर से घिरा हुआ है। ठीक इसी प्रकार क़ुरआन में कहा गया है कि 'अल्लाह सबको घेरे हुए है।' (4:126) गीता में ईश्वर को 'अक्षर' अर्थात् कभी न मिटनेवाला और अन्य को 'मिटनेवाला'

---

1. "ऐ अल्लाह, मेरे दिल में नूर (प्रकाश) पैदा कर, और मेरे कान और मेरी आँख में नूर डाल दे, और मेरी दाईं ओर नूर और मेरी बाईं ओर नूर कर दे, और मेरे आगे और मेरे पीछे भी नूर कर दे, और मेरे ऊपर नूर कर दे और मेरे नीचे नूर कर दे और क़ियामत के रोज़ मेरे नूर को ख़ूब बढ़ा दे।" (हदीस)

   "(ऐ पालनहार!) हमें सीधा मार्ग दिखा।" (क़ुरआन, 1:5)

कहा गया है अर्थात् 'क्षर', इसी को क़ुरआन में इस प्रकार कहा गया है कि 'सब चीज़ें फ़ानी हैं, बाक़ी रहनेवाला सिर्फ़ अल्लाह है।' (55:26) गीता में ईश्वर को 'आचिंत्य' और 'अनिवर्चनीय' कहा गया है अर्थात् 'बुद्धि से परे' और 'वर्णन न करने योग्य।' क़ुरआन में भी ईश्वर के लिए कहा गया है कि उसके जैसी कोई चीज़ नहीं। 'इनसानी निगाहें उसे देख और समझ नहीं सकतीं।' (6:103)

इतिहास के अनुसार वैदिक साहित्य और गीता का दूर का भी सम्बन्ध तत्कालीन अरब के धर्म, धार्मिक विचारों और मान्यताओं से नहीं था। इतिहास के ज्वलन्त पहलू के जागरण में गीता और क़ुरआन की इस हद तक केवल एकेश्वरवाद पर ही समानता नहीं बल्कि गीता के धर्मयुद्ध और क़ुरआन के जिहाद के लिए समानान्तर आधार और परिस्थितियाँ और उनके लिए एक ही प्रकार के प्रेरक और उद्बोधक निर्देश, गीता को मुहम्मद साहब की पैग़म्बरी के साक्ष्य के रूप में पेश करते हैं। जहाँ तक दूसरे नियम नमाज़ का प्रश्न है उपासना एवं प्रार्थना का महत्त्व विशाल हिन्दू साहित्य में वर्णित है, लेकिन इसी उपासना एवं प्रार्थना को इस्लाम में एकरूपता और सामाजिक दृष्टिकोण तथा नियमितता प्रदान करके नमाज़ के रूप में अत्यधिक प्रभावी बना दिया गया है। हिन्दू धर्म में दान की बड़ी महिमा बताई गई है, लेकिन उसका पात्र ब्राह्मण को ही समझा गया है। किन्तु इस्लाम ने ज़कात को अनिवार्य करके और उसकी पात्रता निर्धनों के लिए घोषित करके वास्तविक समाजवाद की नींव रख दी है। इस्लाम का अनिवार्य दान अनूठा है। व्रत का महत्त्व भी हिन्दू धर्म में बहुत है। चन्द्रामण व्रत जो एक माह का चाँद की कलाओं के अनुसरण में प्रारम्भ और समाप्त होता है, रोज़ा ही के समान है, यद्यपि वह अब प्रायः लुप्त है लेकिन अभी भी अनेक व्रत हैं जिनमें निर्जला एकादशी और अनेक अन्य व्रत हैं, लेकिन हिन्दुओं के ये व्रत विविध अवसरों पर वैकल्पिक रूप से माने जाते हैं और औरतों तक सीमित हैं। इसके विपरीत रोज़ा की अनिवार्यता औरत, मर्द सब के लिए है। इसकी एकरूपता, सुनिश्चितता, सार्वभौमिकता एवं इसका अन्य नियमों से समन्वय बहुत ही गौरवपूर्ण है। इस्लाम में रोज़ा का सामाजिक पहलू है जबकि हिन्दुओं का व्रत व्यक्तिगत ढंग का है। रोज़ा के समापन पर विशाल सामूहिक नमाज़ और पारस्परिक अभिवादन समता और भाईचारे का साक्षात् रूप प्रस्तुत करते हैं। तीर्थों का प्रतिरूप हज है। हिन्दुओं के असंख्य तीर्थ हैं जिनका सम्बन्ध केवल विश्वासों से है या पौराणिक कल्पनाओं से, जबकि इस्लाम का हज एकरूपता, गम्भीरता और धार्मिकता के साथ ऐतिहासिकता से भी सम्बद्ध है। संक्षेप में, इस्लाम के ये पाँचों अध्यादेश हिन्दू धर्म में बीजरूप से मौजूद हैं और चूँकि हिन्दू धर्म प्राचीनतम है, यह पहलू मुहम्मद साहब की पैग़म्बरी का ज्वलन्त साक्ष्य

है। इस्लाम ने इन नियमों को अधिक सार्थक और प्रभावशाली बनाया और समाज के लिए आश्चर्यजनक रूप से फलदायक बना दिया। सबसे बढ़कर सुखद बात यह है कि इस्लाम में तौहीद को छोड़कर अन्य चार नियमों में असाधारण परिस्थितियों के अनुसार आवश्यक छूट दी गई है। तौहीद तो दिल, दिमाग़ और रूह से, सर्वशक्तिमान ईश्वर पर विश्वास से सम्बन्ध रखती है अतः इसमें छूट का प्रश्न ही नहीं है। इसमें छूट तो शिर्क है। अन्य धर्मों में एकेश्वरवाद में छूट और संशोधन के ही कारण भ्रष्टता आई। इस्लाम हर शिर्क को शिर्क ही समझता है। इस्लाम ने एकेश्वरवाद को सर्वथा सुरक्षित रखा है। यही इस्लाम की विशेषता है। अतः इस्लाम में ज़कात, रोज़ा और हज में, विशेष परिस्थिति में जैसे शारीरिक कमज़ोरी या बीमारी और आर्थिक कठिनाइयों में छूट दी गई है। उदाहरण के लिए दान (ज़कात) के लिए सर्व असमर्थ व्यक्ति के लिए यहाँ तक विकल्प रख दिया गया है कि वह झगड़ा फ़साद से बचा रहे, तो यही उसकी ज़कात है। इस्लाम के ये नियम जो संक्षिप्त और सरल हैं जनसाधारण से विशिष्ट समुदाय की पहुँच में हैं। तौहीद को छोड़कर शारीरिक और आर्थिक कष्टों में ज़कात, रोज़ा और हज में छूट से निर्धनों, रोगियों और अपाहिजों के लिए भी इस्लाम वरदान बन गया है, जबकि अन्य धर्मों में सर्वथा अपमानित और उपेक्षित हैं। इस्लाम, जिसने धर्म में व्ययशील कर्मकाण्डों का सर्वथा निराकरण कर दिया है, अपने व्यावहारिक नियमों व अन्य नैतिक तथा सामाजिक सहायक नियमों के समन्वय से, स्थायी और सार्वभौम आधार पर सबका धर्म है, जिनमें मर्द, औरत, तिरस्कृत, अनाथ, दास, अपाहिज, व्यक्ति, परिवार, समुदाय, राष्ट्र सभी सम्मिलित हैं। सारांश यह कि उन सब समस्याओं के समाधान की समता रखने के कारण जिनसे मनुष्य को पाला पड़ता है, इस्लाम सबसे बढ़कर कल्याणकारी है। संक्षेप में इस्लाम की प्रधान विशेषताएँ निम्न हैं—

1. इस्लाम की सबसे प्रधान विशेषता उसका विशुद्ध एकेश्वरवाद है। हिन्दू धर्म के ईश्वर-कृत वेदों का एकेश्वरवाद कालान्तर से बहुदेववाद में खोया तो नहीं गया तथापि बहुदेववाद और अवतारवाद के बाद ईश्वर को मुख्य से गौण बना दिया गया है। इसी प्रकार ईसाई की त्रियेक परमेश्वर (Trinity) अर्थात् ईश्वर, पुत्र और आत्मा की कल्पना ने हिन्दुओं के अवतारवाद के समान ईसाई धर्म में भी ईश्वर मुख्य न रह कर गौण हो गया, इसके विपरीत इस्लाम के एकेश्वरवाद में न किसी प्रकार का परिवर्तन हुआ और न विकार उत्पन्न हुआ। इसकी नींव इतनी सुदृढ़ है कि इसमें मिलावट असम्भव है। इसका कारण इस्लाम का यह आधारभूत कलिमा है—"मैं स्वीकार करता हूँ कि ईश्वर के अतिरिक्त कोई ईश्वर और उपास्य नहीं और मुहम्मद ईश्वर के दास और उसके दूत हैं।" मुहम्मद साहब को ईश्वर ने क़ुरआन

में अधिकतर "अब्द" कहा है जिसका अर्थ आज्ञाकारी व दास है अतएव ईश्वर का दास न ईश्वर का अवतार हो सकता है और न उपास्य हो सकता है।

2. इस्लाम ने मदिरा को हर प्रकार के पापों की जननी कहा है। अतः इस्लाम में मदिरा-पान का निषेध केवल नैतिक स्तर पर ही नहीं बल्कि एक घोर दण्डनीय अपराध भी है अर्थात् कोड़े की सज़ा। इस्लाम में सिद्धान्ततः ताड़ी, भंग आदि सभी मादक वस्तुएँ निषिद्ध हैं जबकि हिन्दू धर्म में इसकी मनाही भी है और नहीं भी है। विष्णु के उपासक मदिरा को वर्जित मानते हैं और काली के उपासक धार्मिकजन, शिव जैसे देवता को भंग-धतूरा का सेवनकर्ता बताया जाता है तथा शैव भी भंग, गाँजा आदि सेवन करते हैं।

3. ज़कात अर्थात् अनिवार्य दान। यह श्रेय केवल इस्लाम को प्राप्त है कि उसके पाँच आधारभूत कृत्यों—नमाज़ (उपासना), रोज़ा (व्रत), हज (काबा की तीर्थ यात्रा) में एक मुख्य कृत्य ज़कात भी है। इस दान के अधिकारियों में निर्धन भी हैं और ऐसे क़र्ज़दार भी हैं जो क़र्ज़ अदा करने में असमर्थ हों, या इतना धन न रखते हों कि कोई कारोबार कर सकें। नियमित रूप से धनवानों के धन में इस्लाम में मूलतः धनहीनों का अधिकार निश्चित कर दिया है अतएव ज़कात में जिन लोगों का अधिकार है उनके लिए यह आवश्यक नहीं है कि वह ज़कात लेने के वास्ते भिक्षुक बनकर धनवानों के पास जाएँ। यह इस्लामी शासन का मूल-कर्त्तव्य है कि वह धनवानों से ज़कात वसूल करे और उसके अधिकारियों को दे। धनहीनों के प्रति ऐसी चिन्ता व उनका ऐसा आदर किसी भी दूसरे धर्म में नहीं है।

4. इस्लाम में हर प्रकार का जुआ निषिद्ध है जबकि हिन्दू धर्म में दीपावली में जुआ खेलना धार्मिक कार्य है। ईसाई धर्म में भी जुआ पर कोई प्रतिबन्ध नहीं है।

5. सूद (ब्याज) एक ऐसा व्यवहार है जो धनवानों को और धनवान, तथा धनहीनों को और धनहीन बना देता है। समाज को इस पतन से सुरक्षित रखने के लिए किसी धर्म ने सूद पर किसी प्रकार की रोक नहीं लगाई है। इस्लाम ही ऐसा धर्म है जिसने सूद को अति वर्जित ठहराया है। सूद को निषिद्ध घोषित करते हुए क़ुरआन में बाक़ी सूद को छोड़ देने की आज्ञा दी गई है और न छोड़ने पर ईश्वर और उसके सन्देष्टा से युद्ध की धमकी दी गई है। (क़ुरआन, 2:279)

6. इस्लाम ही को यह श्रेय भी प्राप्त है कि उसने धार्मिक रूप से रिश्वत (घूस) को निषिद्ध ठहराया है (क़ुरआन, 2:188)। हज़रत मुहम्मद साहब ने रिश्वत देनेवाले और लेनेवाले दोनों पर ख़ुदा की लानत भेजी है।

7. इस्लाम ही ने सबसे पहले स्त्रियों को सम्पत्ति का अधिकार प्रदान किया, उसने मृतक की सम्पत्ति में भी स्त्रियों को हिस्सा दिया[1]। हिन्दू धर्म में विधवा स्त्री के पुनर्विवाह का नियम नहीं है, इतना ही नहीं मृत पति के शव के साथ विधवा को जीवित जलाने की प्रथा थी। जो नहीं जलाई जाती थी वह न अच्छा भोजन कर सकती थी, न अच्छा वस्त्र पहन सकती थी और न शुभ कार्यों में भाग ले सकती थी। वह सर्वथा तिरस्कृत हो जाती थी, उसका जीवन भारस्वरूप हो जाता था। इस्लाम में विधवा के लिए कोई कठोर नियम नहीं है। पति की मृत्यु के चार महीने दस दिन बाद वह अपना दूसरा विवाह कर सकती है।

8. इस्लाम ही ने अनिवार्य परिस्थिति में स्त्रियों को पति-त्याग का अधिकार प्रदान किया है, हिन्दू धर्म में स्त्री को यह अधिकार नहीं है। हमारे देश में संविधान द्वारा अब स्त्रियों को अनेक अधिकार मिले हैं।

9. यह इस्लाम ही है जिसने किसी स्त्री के सतीत्व पर लांछना लगानेवाले के लिए चार साक्ष्य उपस्थित करना अनिवार्य ठहराया है और यदि वह चार साक्ष्य उपस्थित न कर सके तो उसके लिए अस्सी कोड़ों की सज़ा निश्चित की है। इस सन्दर्भ में श्री रामचन्द्र और हज़रत मुहम्मद साहब का तुलनात्मक आचरण विचारणीय है। मुहम्मद साहब की पत्नी आइशा के सतीत्व पर भी लांछना लगाई गई थी जो मुहम्मद साहब के आदेश पर नहीं बल्कि, व्यावहारिक छान-खोज के बाद मिथ्या सिद्ध हुई, आइशा निर्दोष सिद्ध हुईं। परन्तु रामचन्द्र जी ने केवल संशय के कारण श्रीमती सीता देवी का परित्याग कर दिया जबकि वह अग्नि परीक्षा द्वारा अपना सतीत्व सिद्ध कर चुकी थीं। यदि हिन्दू-जन रामचन्द्र जी के इस आचार का अनुसरण करने लगें तो कितनी निर्दोष स्त्रियों का जीवन अपमानित और नष्ट हो जाए। स्त्रियों को इस्लाम का कृतज्ञ होना चाहिए कि उसने निर्दोष स्त्रियों पर दोषारोपण को केवल नैतिक ही नहीं; बल्कि वैधानिक अपराध भी ठहराया।

10. इस्लाम ही है जिसने कम नापने और कम तौलने को वैधानिक अपराध के साथ धार्मिक पाप भी ठहराया और बताया कि परलोक में भी इसकी पूछ होगी।

11. इस्लाम ने अनाथों के सम्पत्तिहरण को धार्मिक पाप ठहराया है।

(क़ुरआन, 4:10, 4:127)

12. इस्लाम कहता है कि यदि तुम ईश्वर से प्रेम करते हो तो उसकी सृष्टि

---

1. क़ुरआन (4:11-12, 4:33, 4:176)— ये नियम निर्धारित करने के बाद क़ुरआन कहता है कि ये अल्लाह की सीमाएँ हैं, इनका उल्लंघन करनेवाला (परलोक के जीवन में; नरक की) आग में डाला जाएगा जिसमें में वह सदा रहेगा और यह बड़ी ही घोर यातना है। (4:14) (प्रकाशक)

से प्रेम करो।

13. इस्लाम कहता है कि ईश्वर उससे प्रेम करता है जो उसके बन्दों के साथ अधिक से अधिक भलाई करता है।

14. इस्लाम कहता है कि जो प्राणियों पर दया करता है, ईश्वर उसपर दया करता है।

15. दया ईमान की निशानी है। जिसमें दया नहीं उसमें ईमान नहीं।

16. किसी का ईमान पूर्ण नहीं हो सकता जब तक वह अपने साथी को अपने समान न समझे।

17. कोई व्यक्ति सही भावार्थ में मुसलिम नहीं हो सकता यदि वह पेट भरकर सोए और उसका पड़ोसी खाली पेट (भूखा) हो।

18. इस्लाम के अनुसार इस्लामी राज्य कुफ्र (अधर्म) को तो (विशेष परिस्थितियों में तथा निश्चित सीमा तक) सहन कर सकता है, परन्तु अत्याचार और अन्याय को सहन नहीं कर सकता।

19. इस्लाम कहता है कि जिसका पड़ोसी उसकी बुराई से सुरक्षित न हो वह ईमानवाला नहीं है।[1]

20. जो व्यक्ति किसी व्यक्ति की एक बालिश्त भूमि भी अनाधिकार रूप से ले लेगा वह क़ियामत के दिन सात तह तक पृथ्वी में धँसा दिया जाएगा।

21. इस्लाम में जो समता और बन्धुत्व है वह संसार के किसी धर्म में नहीं है। हिन्दू धर्म में हरिजन घृणित और अपमानित माने जाते हैं। इस भावना के विरुद्ध 2500 वर्ष पूर्व महात्मा बुद्ध ने आवाज़ उठाई और तब से अब तक अनेक सुधारकों ने इस भावना को बदलने का प्रयास किया, आधुनिक काल में गाँधी जी ने अथक प्रयास किया किन्तु वे भी हिन्दुओं की इस भावना को बदलने में सफल नहीं

---

1. हज़रत मुहम्मद (सल्ल०) ने पड़ोसियों के साथ हर प्रकार से भलाई करने पर विशेष रूप से बल दिया है और इसमें मुसलिम और ग़ैर-मुसलिम का कोई भेद नहीं रखा है। हज़रत मुहम्मद (सल्ल०) का वचन है कि "जिबरईल (फ़रिश्ता) जो आपके पास ईश्वर का आदेश लाया करते थे सर्वदा मुझको पड़ोसी के साथ भलाई करने का आदेश देते रहे, यहाँ तक कि मुझको गुमान होने लगा कि वह विरासत में पड़ोसी को हक़दार बना देंगे।" इस्लाम के एक महा विद्वान इमाम इब्ने हजर ने इस वचन की व्याख्या में लिखा है कि पड़ोसी में मुसलिम, ग़ैर-मुसलिम, मित्र, शत्रु सब सम्मिलित हैं। इसी प्रकार दया और नम्रता पर भी महामान्य हज़रत मुहम्मद ने अत्यधिक ज़ोर दिया है, आपका वचन है—मैं लानत (धिक्कार, बद्दुआ) करनेवाला नहीं बल्कि दया बनाकर भेजा गया हूँ। दया के पात्र होने में भी मुसलिम-ग़ैर-मुसलिम तथा समस्त प्राणी सम्मिलित हैं।

हो सके। इसी प्रकार ईसाइयों में भी गोरे-काले का भेद है। गोरों का गिरजाघर अलग और कालों का गिरजाघर अलग होता है। गोरों के गिरजाघर में काले प्रवेश नहीं कर सकते। दक्षिणी अफ़्रीक़ा में इस युग में भी गोरे ईसाई काले ईसाइयों पर अत्याचार कर रहे हैं, जबकि चारों ओर समाजवाद का नारा व्याप्त है और राष्ट्रसंघ का नियन्त्रण है। इस भेद-भाव को इस्लाम ने ऐसा जड़ से मिटाया कि इसी दक्षिणी अफ़्रीक़ा में ही एक जुलू के मुसलमान होते ही मुसलिम समाज में उसे समानता प्राप्त हो जाती है, जबकि ईसाई होने पर ईसाई समाज में उसको यह पद प्राप्त नहीं होता। गाँधीजी ने इस्लाम की इस प्रेरक शक्ति के प्रति हार्दिक उद्गार व्यक्त किया है।[1]

---

1. राजेन्द्र नारायण लालजी ने संक्षेप की नीति से काम लिया है ताकि सर्वसाधारण, सरलता से इन विषयों से अवगत हो सके, किन्तु हम समता और बन्धुत्व के सम्बन्ध में संक्षिप्त रूप से इस्लाम की कुछ शिक्षा और उदाहरण उपस्थित कर दें तो यह अनुपयुक्त न होगा।

इस्लाम मूल रूप से ही मानवता को अभेद ठहराता है, वह कहता है कि सारे ही मनुष्य एक माता-पिता की सन्तान हैं। पवित्र क़ुरआन में ईश्वर ने कहा है—

"हे मनुष्यो! हमने तुमको एक पुरुष और एक स्त्री से उत्पन्न किया और तुम्हारी जातियाँ और बिरादरियाँ बना दीं ताकि तुम एक-दूसरे को पहचानो। वास्तव में ईश्वर के निकट सबसे इज़्ज़तवाला वह है जो तुममें सबसे अधिक संयमी (सुकर्मी) है। निस्सन्देह ईश्वर सब कुछ जाननेवाला, सब कुछ की सूचना रखनेवाला है।" (क़ुरआन, 49:13)

यह अति अर्थपूर्ण आयत है। इसमें तीन बातें मुख्य रूप से बताई गई हैं जिनको न समझने ही के कारण मानवता सन्तान-सन्तान, देश-देश, जाति-जाति और वर्ण-वर्ण में विभक्त हो गई है। मनुष्य यह भूल गया है कि वह एक ही माता-पिता की सन्तान है। मानव-इतिहास जिस कटुता, कलह, द्वेष और रक्तपात से भरा हुआ है तथा आज भी यही सब देखा जा रहा है, इसी मिथ्या भेदभाव का परिणाम है। इस आयत में मनुष्य को सबसे पहले इसी वास्तविकता से सूचित किया गया है। दूसरी बात यह बताई गई है कि सन्तान, गोत्र, परिवार, जाति और देश के भेद का यह अर्थ नहीं है कि इनमें से कोई किसी से श्रेष्ठ और कोई किसी से हीन है। सभी मनुष्य पृथ्वी के एक ही भाग में तो समा नहीं सकते थे और न सबको आजीविका मिल सकती थी, इसलिए अलग-अलग देश बन गए और जातियाँ बन गईं, गोत्र और परिवार बन गए कि एक-दूसरे को पहचान सकें और एक-दूसरे का हक़ अदा कर सकें, इसी रूप में व्यवस्था भी स्थापित हो सकती थी।

तीसरी, बात यह समझाई है कि वास्तविक श्रेष्ठता का आधार, सन्तान, गोत्र, वर्ण, जाति और देश नहीं है, वरन् संयम, चरित्रता और सुकर्म है। जो व्यक्ति संयमी, सच्चरित्र और सुकर्मी है वह श्रेष्ठ है चाहे वह किसी देश, जाति, गोत्र और वर्ण का हो और जो इसके विरुद्ध है वह हीन है, चाहे किसी देश, जाति, गोत्र और वर्ण का हो। अरब में महाईशदूत हज़रत मुहम्मद (सल्ल०) की जाति क़ुरैश को अपनी श्रेष्ठता पर इतना गर्व था कि वह किसी जाति को अपने बराबर नहीं समझती थी। मक्का विजय के ऐतिहासिक अवसर पर अपनी जाति क़ुरैश को सम्बोधित करके महाईशदूत (सल्ल०) ने कहा— "लोगो! सब मनुष्य दो ही भागों में विभक्त हैं एक सुकर्मी और संयमी जो ईश्वर के निकट

(शेष फुटनोट अगले पृष्ठ पर)

क्या इस्लाम तलवार द्वारा फैला ?

संसार के सब धर्मों में इस्लाम की एक विशेषता यह भी है कि इसके विरुद्ध जितना भ्रष्ट प्रचार हुआ किसी अन्य धर्म के विरुद्ध नहीं हुआ। सबसे पहले तो महाईशदूत मुहम्मद साहब की जाति क़ुरैश ही ने इस्लाम का विरोध किया और अन्य कई साधनों के साथ भ्रष्ट प्रचार और अत्याचार का साधन अपनाया। यह भी इस्लाम की एक विशेषता ही है कि उसके विरुद्ध जितना प्रचार हुआ वह उतना ही फैलता और उन्नति करता गया तथा यह भी एक प्रमाण है—इस्लाम के ईश्वरीय सत्य-धर्म होने का। इस्लाम के विरुद्ध जितने प्रकार के प्रचार किए गए हैं और किए जाते हैं उनमें सबसे उग्र प्रचार यह है कि इस्लाम तलवार के ज़ोर से फैला, यदि ऐसा नहीं है तो संसार में अनेक धर्मों के होते हुए इस्लाम चमत्कारी रूप से संसार में कैसे फैल गया? इस प्रश्न या शंका का संक्षिप्त उत्तर तो यह है कि जिस काल में इस्लाम का उदय हुआ उन धर्मों के आचरणहीन अनुयाइयों ने धर्म को भी भ्रष्ट कर दिया था। अतः मानव कल्याण हेतु ईश्वर की इच्छा द्वारा इस्लाम सफल हुआ और संसार में फैला, इसका साक्षी इतिहास है।[1]

(पिछले फुटनोट का शेष)

श्रेष्ठ है, दूसरा कुकर्मी और दुराचारी जो ईश्वर के समक्ष अपमानित है। सब मनुष्य आदम की सन्तान हैं और आदम को ईश्वर ने मिट्टी से बनाया था।'' ऐसा विजय-भाषण न लंका-विजय पर रामचन्द्र जी ने दिया और न कृष्णजी ने कौरव-विजय पर। महाईशदूत ने अपने जीवन के अन्तिम हज के अवसर पर जब अरब के कोने-कोने से मुसलमान हज करने मक्का आए थे अपने भाषण में फ़रमाया— ''लोगो ख़बरदार! तुम सबका ईश्वर एक है, किसी अरब निवासी को अन्य ग़ैर-अरब निवासी पर, तथा किसी ग़ैर-अरब निवासी को अरब निवासी पर, किसी गोरे को किसी काले पर और किसी काले को किसी गोरे पर कोई प्रधानता प्राप्त नहीं है सिवाय संयम और सुकर्म के। ईश्वर के निकट तुममें सबसे इज्जतवाला वह है जो सबसे अधिक संयमी और सुकर्मी है।''

इस प्रकार का उपदेश और आदेश कहने तक ही सीमित नहीं रहा, महाईशदूत के सहचरों में अरब भी थे और ग़ैर अरब भी, वह व्यक्ति भी थे जो दास रह चुके थे, इनको क़ुरैश से समता ही नहीं उनके बाद मुसलमान होनेवाले क़ुरैश पर प्रधानता भी प्राप्त थी। सौ-दो सौ साल बाद मुसलमान होनवाले अन्य देशों के विद्वान अरब के धार्मिक नेता बन गए, आज भी खान-पान में धार्मिक विद्यालयों और मसजिदों में इस्लामी समता और भाईचारे का अवलोकन किया जा सकता है। इनमें भारी संख्या उनकी होती है जो शूद्र जातियों से मुसलमान हुए थे। इस्लामी समता और भाईचारे का सबसे अधिक मनोरम और प्रभावकारी दृश्य मक्का में हज के अवसर पर देखने को मिलता है। अरबी, ईरानी, अफ़ग़ानी, तुर्की, भारतीय, मलेशियाई, इण्डोनेशी आदि सब भाई-भाई बन जाते हैं।

1. जिस समय मक्का निवासी अपनी पूरी शक्ति से युद्ध द्वारा इस्लाम और मुसलमानों के उन्मूलन का प्रयास कर रहे थे, यह ईश्वरीय वाणी अवतरित हुई—

  ''विरोधी अपने मुँह की फूँकों से ईश्वर के प्रकाश को बुझाना चाहते हैं और ईश्वर अपने प्रकाश को पूर्णरूप से फैला कर रहेगा चाहे वह विधर्मियों को कितना ही नापसन्द हो। वही

(शेष फुटनोट अगले पृष्ठ पर)

मुहम्मद साहब के ईशदूत पद पर नियुक्त होने के पहले अरब जाति सर्वथा धर्म भ्रष्ट तथा पापाचारों का साकार रूप थी, ऐसी पतित जाति को धर्मात्मा और सुकर्मी बनाने के लिए सर्वथा साधनहीन तथा निःसहाय होते हुए भी ईश्वर की प्रेरणा से मुहम्मद साहब अकेले खड़े हो गए। जिनके हृदय शुद्ध थे वे आपके उपदेश से इस्लाम ग्रहण करने लगे किन्तु आपकी जाति के सरदारों को यह साहस न था कि वे अपने पूर्वजों का धर्म त्यागकर आपको अपना धर्म गुरु मान लें और आपकी अधीनता स्वीकार कर लें। आपके धर्मप्रचार के विरुद्ध प्रतिरोधक बनकर खड़े हो गए और आपपर और आपके अनुयाइयों पर असह्य अत्याचार करने लगे, यहाँ तक कि अत्याचार-पीड़ित मुसलमानों का एक समूह हिजरत अर्थात् धर्म के लिए देश त्याग करके हबशा चला गया। मक्का में अत्याचार चक्र चलता रहा, अन्ततः मुहम्मद साहब और मुसलमानों का अपनी जन्मभूमि में रहना असम्भव हो गया था। मक्का में तो इस्लाम की यह अवस्था थी, अब देखिए मदीना में इस्लाम कैसे पहुँच जाता है और घर-घर फैल जाता है। इसी से अनुमान किया जा सकता है कि संसार में इस्लाम कैसे फैला? हुआ यह कि मदीना निवासियों का एक समूह हज करने मक्का आया, मुहम्मद साहब ने उनको इस्लाम का उपदेश दिया और उन्होंने इस्लाम ग्रहण कर लिया। दूसरे साल कुछ और निवासी हज करने आए और मुहम्मद साहब के उपदेश से वे भी मुसलमान हो गए। इनकी प्रार्थना पर, इनकी शिक्षा के लिए मुहम्मद साहब ने अपने एक सहचर को मदीना भेज दिया। इनके द्वारा वहाँ घर-घर इस्लाम फैल गया। तीसरे वर्ष हज के अवसर पर मदीना के मुसलमानों का एक भारी समूह मक्का आया। उसने मुहम्मद साहब के समक्ष प्रस्ताव रखा कि आप और मुसलमान मक्का त्यागकर मदीना चले आएँ, हम जान व माल हर प्रकार से आपकी और मुसलमानों की सहायता और रक्षा करेंगे। आपने यह प्रस्ताव स्वीकार कर लिया और मुसलमानों को मदीना जाने की आज्ञा दे दी और वे मदीना चले गए। हबशा की हिजरत के बाद यह दूसरी ऐतिहासिक हिजरत थी। मुहम्मद साहब को तो रात के समय इस अवस्था में हिजरत करनी पड़ी थी कि शत्रु आपकी

(पिछले पृष्ठ का शेष)

है जिसने अपने सन्देष्टा को सत्य मार्ग और सत्य धर्म के साथ भेजा है ताकि उसे समस्त धर्मों पर सत्तावान कर दे चाहे वह कर्म बहुदेववादियों को कितना ही नापसन्द हो।"

(क़ुरआन, 61:8-9)

अरब में बहुदेववादियों के अतिरिक्त यहूदी और ईसाई भी थे। ये दोनों सम्प्रदाय इस्लाम से द्वेष रखते थे। ईसाई देशों ने ही यह भ्रष्ट प्रचार किया कि इस्लाम तलवार के ज़ोर से फैला लेकिन आगे चलकर उन्हीं देशों में ऐसे विद्वान भी हुए जिन्होंने इस आरोप का खण्डन किया। हमारे देश में भी दोनों प्रकार के आरोपकर्ता और आरोपों के खण्डनकर्ता विद्वान हुए हैं

हत्या के लिए आपका घर घेरे खड़े थे परन्तु आप ईश्वर की रक्षा में घर से सुरक्षित निकल गए।[1]

यह है इस्लाम का 13 वर्ष का इतिहास। फिर यह स्वीकार करने में कौन-सा तर्क बाधक होता है कि इस्लाम अपनी सत्यता और नैतिकता की शक्ति तथा मुहम्मद साहब के दिव्य व्यक्तित्व के प्रभाव द्वारा फैला। युद्ध तो शत्रुओं ने आपपर लादा था। जिस प्रकार रक्षार्थ देश-त्याग करना पड़ा था उसी प्रकार रक्षार्थ युद्ध पर भी बाध्य होना पड़ा। मुहम्मद साहब और मुसलमानों के देश-त्याग के बाद भी मक्का निवासियों की शत्रुता-अग्नि शान्त न हुई, उन्होंने मदीने पर आक्रमण आरम्भ कर दिया। अब धर्म-रक्षा ही का प्रश्न न था, प्राण-रक्षा का प्रश्न भी उपस्थित हो गया था। इसी परिस्थिति में ईश्वर की ओर से मुसलमानों को रक्षार्थ जिहाद की अनुमति मिली। इस्लाम-विरोधी आक्षेप करते हैं कि मुहम्मद साहब का आन्दोलन मक्का में पूर्णरूपेण शान्तिमय था, परन्तु मदीने में उनको शक्ति प्राप्त हुई तो उन्होंने अपनी नीति बदल दी। यह कितना अन्यायपूर्ण आक्षेप है? क्या इस परिस्थिति में भी मुहम्मद साहब को मुसलमानों से कहना चाहिए था कि "अपनी और धर्म की रक्षा मत करो। गर्दनें कटवा दो?" रक्षार्थ युद्ध किस धर्म और किस राजनीति में वर्जित है? रामचन्द्र जी ने तो पत्नी के लिए और कृष्ण जी ने भूमि के लिए युद्ध किया। रामचन्द्र जी के युद्ध से देश और राष्ट्र का कौन-सा कल्याण हुआ? कृष्णजी के युद्ध के फलस्वरूप उनके सम्बन्धियों और अर्जुन के परिवार का संहार हो गया और राष्ट्र की शक्ति क्षीण हो गई। मुहम्मद साहब के युद्ध के द्वारा उनकी जाति के बहुत थोड़े लोग मारे गए। मक्का विजय के समय मुहम्मद साहब ने अपने 21 वर्ष के शत्रुओं को जिनमें बड़े-बड़े अपराधी भी थे क्षमा कर दिया, जाति भी सुरक्षित रह गई, इस्लाम भी स्थापित हो गया और क़बीलों-क़बीलों में बँटा हुआ देश इस्लाम की व्यवस्था में बँधकर सुदृढ़ हो गया।

इस्लाम को तलवार की शक्ति से प्रसारित होना बतानेवाले इस तथ्य से अवगत होंगे कि अरब मुसलमानों के ग़ैर-मुसलिम विजेता तातारियों ने विजय के बाद विजित अरबों का इस्लामी धर्म स्वयं ही स्वीकार कर लिया। ऐसी विचित्र घटना कैसे घट गई? तलवार की शक्ति तो विजेताओं के पास थी वह इस्लाम से विजित क्यों हो गई? इस्लाम के विलक्षण प्रसार पर आरोप लगानेवालों के पास इसका क्या

---

1. मक्का से मुसलमानों की कोई तलवार मदीना नहीं गई थी। यह वह समय था जब मक्का के मुसलमान स्वयं पीड़ित व अत्याचार-ग्रस्त थे। जो मुसलमान मक्का से मदीना हिजरत कर के गए उनके हाथ में भी तलवार नहीं थी, क्योंकि वे वहाँ शरणार्थी बनकर गए थे, सैनिक बनकर नहीं। फिर भी मदीना में इस्लाम घर-घर फैल जाता है।

उत्तर है ?

मंगोलों की बर्बरता का निराकरण इस्लाम के अलावा किस धर्म के पास था ? सारा संसार मंगोलों की बर्बरता और अत्याचार से थर-थर काँपता था। उनको सभ्यता और संस्कृति का पाठ पढ़ाकर मनुष्य बना देने का श्रेय केवल इस्लाम को प्राप्त है। क्या चीन, हिन्देशिया[1] और अफ़्रीक़ा में इस्लाम का प्रसार तलवार के द्वारा हुआ ? इतिहास तो यह नहीं बताता।

हो सकता है कि मध्य काल में यूरोप में, भारत में या अन्य देशों में जो युद्ध हुए और जिनमें मुसलमान एक पक्ष थे और विजयी हुए, परिणामतः मुसलिम समाज स्थापित हुए, विजित ग़ैर-मुसलिमों पर अत्याचार हुए हों और इस्लाम के राज्यधर्म होने से कुछ अत्युत्साही और अविवेकी मुसलमानों ने बल प्रयोग किया हो किन्तु इस प्रकार के युद्धजन्य दुर्घटनाओं और अविवेकपूर्ण अत्युत्साह को इस्लाम के खाते में रखना नितान्त अन्याय है। ये युद्ध तो उसी प्रकार के थे जैसे मुसलमानों-मुसलमानों के बीच हिन्दुओं-हिन्दुओं के बीच ईसाइयों-ईसाइयों के बीच, राजपूतों के पारस्परिक युद्ध, मराठा से मराठा के युद्ध, मुग़ल और पठानों के युद्ध।

यदि हम इन युद्धों के राजनीतिक कारणों से विमुख होकर हिन्दुओं और मुसलमानों के युद्ध का कारण इस्लाम को ठहराएँ तो क्या यह वास्तविकता के सर्वथा विरुद्ध न होगा।

भारत में ऐसे युद्ध अपवाद स्वरूप ही हैं जिनमें एक पक्ष विशुद्ध मुसलमान और दूसरा पक्ष विशुद्ध हिन्दू रहा हो। आरम्भ में चाहे ऐसा हुआ हो किन्तु मुसलमानों के स्थायी रूप से भारत में निवास कर लेने के बाद ऐसा नहीं हुआ। सन् 1565 ई० के तालीकोट के युद्ध में, जो बहमनी मुसलमान राज्यों और हिन्दू राज्य विजयनगर के बीच हुआ, मुसलमानों द्वारा अवश्य बड़ा विनाश हुआ किन्तु उसके पूर्व विजयनगर के हिन्दू राजा ने अहमदनगर के मुसलमान राज्य को बर्बाद कर दिया था और मुसलमानों पर घोर अत्याचार किया था। उसी की प्रतिक्रिया तालीकोट में हुई।

इस्लाम पर बलात् धर्म परिवर्तन का आरोप लगानेवाले इस ऐतिहासिक तथ्य को दृष्टिगत रखें कि मैक्सिको में ईसाइयों द्वारा लाखों ग़ैर-ईसाई मारे गए, तथा अपनी जन्मभूमि से बौद्ध धर्म का लोप स्वतः ही नहीं हो गया था बल्कि ब्राह्मण पुष्यमित्र गुण द्वारा बौद्धों का घोर उत्पीड़न भी किया गया था।

ईसाइयों का अपने ही सम्प्रदाय को जीवित जलाना विशेषकर पुर्तगालियों का, धार्मिक उन्माद और ईसाई मिशनरियों द्वारा कुत्सित प्रलोभनों से धर्म परिवर्तन केवल

---

1. दक्षिण-पूर्व एशिया के देश

साम्राज्यवादी प्रेरणा से है। गोरे ईसाइयों का काले ईसाइयों पर घोर अत्याचार, हिन्दुओं का अपने सहधर्मी हरिजनों पर परम्परागत अत्याचार यह सब (तथाकथित) 'मुसलिम धर्मोन्माद' से कहीं बढ़कर है। इस्लाम का प्रसार उसकी सादगी, शुद्ध समतावाद तथा नैतिक शक्ति से हुआ।

काफ़िर शब्द का अर्थ

युद्ध के समय में क़ुरआन में आया है कि काफ़िरों को मित्र मत बनाओ, उनसे युद्ध करो, उनको जहाँ पाओ मार डालो। इन बातों को लेकर भी इस्लाम के विरुद्ध बड़ी भ्रान्ति फैलाई गई है। "काफ़िर" शब्द "हिन्दू" का पर्यायवाची शब्द नहीं है, इसका मूल अर्थ अकृतज्ञ है। दूसरा अर्थ है—इनकार करनेवाला। अतः जो व्यक्ति मुहम्मद साहब के ईशदूतत्व और ईश्वरीय ग्रन्थ क़ुरआन को नहीं मानता वह इनकार करनेवाला और अकृतज्ञ ही होता है, जिसे अरबी पारिभाषिक शब्द में काफ़िर कहा जाता है। इसी अर्थ में मुहम्मद साहब और क़ुरआन को न माननेवालों के लिए काफ़िर शब्द का प्रयोग हुआ है, इस अर्थ के अनुसार यहूदियों, ईसाइयों और पारसियों के लिए भी काफ़िर शब्द प्रयुक्त हुआ है। ग़ैर-मुसलिम तो ग़ैर-मुसलिम, यदि कोई मुसलमान भी इस्लाम की किसी मान्यता या किसी आज्ञा का जैसे नमाज़ का इनकार कर दे तो वह काफ़िर हो जाएगा।

वैदिक धर्म में काफ़िर का पर्यायवाची शब्द नास्तिक विद्यमान है। बुद्ध जी वेद को नहीं मानते थे इसलिए उनको नास्तिक अर्थात् काफ़िर कहा जाता है और बौद्ध धर्म स्पष्ट रूप से हिन्दू धर्म से पृथक् एक धर्म है। इस वास्तविकता की दृष्टि से काफ़िर शब्द न तो हिन्दुओं के लिए अपमानजनक है और न नास्तिक शब्द मुसलमानों के लिए। परन्तु व्यावहारिक रूप से मुसलमान हिन्दुओं को हिन्दू कहते और लिखते हैं और हिन्दू मुसलमानों को मुसलमान ही कहते और लिखते हैं और यही सज्जनता है, किन्तु इस्लाम में ग़ैर-मुसलिमों के लिए केवल एक शब्द काफ़िर है और हिन्दू धर्म में ग़ैर-हिन्दुओं के लिए स्पष्ट रूप से अनेक अपमानजनक शब्द है जैसे अनार्य, असभ्य, दस्यु, म्लेच्छ आदि। हिन्दू तो अपने सहधर्मियों में ही एक वर्ग को अंत्यज (शूद्र), चाण्डाल और अछूत कहते हैं। (इस्लाम में शब्द 'काफ़िर' एक गुणवाचक शब्द है न कि अपमान-बोधक।)

सगोत्र विवाह विषय

इस्लाम द्वारा प्रतिपादित सगोत्र विवाह को भी आक्षेपनीय समझा जाता है किन्तु सगोत्र विवाह मनोवैज्ञानिक, पारिवारिक, सामाजिक, आर्थिक हर दृष्टिकोण से वांछित

है। सगोत्र विवाह अन्य धर्मों में भी प्रतिपादित है यहाँ तक कि इसके विरोधी हिन्दुओं के पूर्ण अवतार कृष्ण को भी मान्य था। हिन्दुओं में विरोधाभास है। हिन्दुओं की परम्परा है कि वे अपने पूर्व आदिक पुरुषों की मान्यता का इतिहास रखते हुए उससे सर्वथा निषेधात्मक नैतिकता (Negative morality) के नाम पर हट जाते हैं। जबकि इस्लाम में जिन सगोत्र विवाहों की मान्यता है और जिन सगोत्र विवाहों की मान्यता नहीं है उनका आधार मनोवैज्ञानिक है। संक्षेप में इस मनोवैज्ञानिक वास्तविकता को यों समझना चाहिए कि सगी बहन और चचेरी या सम्बन्ध में लगने वाली बहन के प्रति आजन्म एक-सी भावना नहीं रहती। हिन्दुओं में सगोत्रता का व्यापक क्षेत्र बना देने का परिणाम यह है कि एक ही पीढ़ी में न सही तो दूसरी पीढ़ी में तो अवश्य ही दो सगे भाइयों का परिवार एक दूसरे के लिए अजनबी हो जाता है। एक धनी भाई अपने ग़रीब भाई या बहन की सर्वोत्तम सहायता इसी रूप में कर सकता है कि वह अर्थात् धनी भाई अपने लड़के की शादी अपने ग़रीब भाई या ग़रीब बहन की लड़की के साथ कर दे। आकस्मिक सहायता प्रभावी नहीं होती और केवल हीन भावना ही उत्पन्न करती है। वस्तुतः समाजवाद की आधारशिला सगोत्र विवाह है। सगोत्र विवाह का निषेध दहेज को बढ़ावा देता है और पारिवारिक सुख-शान्ति को नष्ट कर देता है। लड़की पैदा होते ही उसके माता-पिता को चिन्ता घेर लेती है कि इसका विवाह कहाँ करेंगे। लड़की के पिता के जूते के तल्ले घिस जाते हैं जबकि गोत्र में योग्य (और पूर्व-परिचित) लड़के मौजूद रहते हैं। अपरिचितों में विवाह का कभी-कभी भयंकर परिणाम होता है । पूर्णावतार कृष्ण जी को सगोत्र विवाह मान्य था । कुन्ती कृष्ण जी और सुभद्रा की फूफी थी । अर्जुन कुन्ती के पुत्र थे । इस प्रकार अर्जुन, सुभद्रा के ममेरे भाई थे । लेकिन उसका विवाह कृष्ण जी की भतीजी अर्थात् बलराम की पुत्री शशिकला से हुआ था । कृष्ण जी का लगाव राधा से था जो रिश्ते में उनकी मामी थी । पृथ्वीराज और जयचन्द ऐतिहासिक पुरुष हैं । दोनों सगे मौसेरे भाई थे । पृथ्वीराज का जयचन्द की लड़की संयोगिता से प्रेम हो गया, यह प्रेम मनोविज्ञान के प्रतिकूल नहीं था । अगर दोनों की शादी हो गई होती, तो पृथ्वीराज और जयचन्द दोनों का सर्वनाश और परिणामतः हिन्दू राज्य का नाश न हुआ होता । इन तथ्यों के प्रकाश में सगोत्र विवाह (Cognate marriage) के निषेध पर हिन्दुओं का गर्वित होना उचित नहीं है। (और इस्लामी समाज में सगोत्र विवाह के प्रावधान को आक्षेप-ग्रस्त करना सर्वथा अनुचित व अतर्कपूर्ण है ।)

इस्लाम और ग़ुलामी

जो ऐसा सोचते हैं कि इस्लाम ग़ुलामी (Slavery) क़ायम रखने का दोषी है

या इस्लाम ग़ुलामी-प्रथा का समर्थक है वह सर्वथा भ्रमग्रस्त हैं। इस्लाम ही एकमात्र ऐसा धर्म है जो मनुष्य को मन, वचन और कर्म से समतावादी बनाने में सक्षम है।[1] दास-प्रथा के सम्बन्ध में इस्लाम और पैग़म्बरे इस्लाम ने मनोवैज्ञानिक उपचार का अवलम्बन लिया। इस्लाम ही ऐसा-धर्म है जो हृदय परिवर्तन और मस्तिष्क-धवन (Brain Washing) के उपायों से कुरीति का उन्मूलन कर देता है। एक दिन में 70 बार एक ग़ुलाम को माफ़ करने का निर्देश देकर और यह घोषित कर कि ग़ुलाम को ''मेरा ग़ुलाम'' न कहकर ''मेरा बच्चा और मेरी बच्ची'' कहा जाए और यह आज्ञा देकर कि ग़ुलाम से अधिक मेहनतवाला काम न लिया

---

1. ग़ुलामी प्रथा का प्रसंग भी ऐसा ही है जैसा चार पत्नियों का। अरब में अज्ञातकाल से ग़ुलामी की प्रथा प्रचलित थी। दो-चार ग़ुलाम तो सामान्य परिवार में भी होते थे, धनवान परिवारों में और अधिक होते थे। ग़ुलाम अरबों के गृहस्थ जीवन का अंग बन गए थे। वे अपने स्वामियों के खेतों और बाग़ों में काम तथा रखवाली करते थे। ऊँट, भेड़ और बकरियाँ चराते थे और लौंडियाँ घर के काम करती थीं और उनका रहन-सहन जीवनयापन सब कुछ उनके स्वामियों पर निर्भर था। यदि इस्लाम ग़ुलामों की स्वतन्त्रता का नियम बना देता तो उसका परिणाम क्या होता? एक ओर ग़ुलाम बेघर और आजीविकाहीन हो जाते, दूसरी ओर अरबों की जीवन-व्यवस्था छिन्न-भिन्न हो जाती।

यह थी स्थिति जिसमें इस्लाम ने ग़ुलामी-प्रथा को एकदम समाप्त कर देना व्यावहारिक रूप से संभव और सैद्धान्तिक रूप से उचित नहीं समझा, परन्तु उसने ग़ुलामों को स्वतंत्र करने की ओर लोगों को प्रेरित किया और इसे पुण्यकर्म में सम्मिलित किया। अगर कोई ग़ुलाम रखता है तो उसके प्रति भी ऐसे नियम निर्धारित कर दिए कि ग़ुलाम अपने स्वामियों के घरवालों के समान हो गए।

पैग़म्बर मुहम्मद (सल्ल०) ने ग़ुलामों के प्रति अनेक मालिकों को यह आदेश दिया—

''तुम्हारे ग़ुलाम तुम्हारे भाई हैं। इसलिए तुममें से जिसके कब्ज़े में उसका कोई भाई हो (विदित हो, कि 'ग़ुलाम' नहीं कहा बल्कि 'भाई' कहा) उसको चाहिए कि वह उसको भी वैसा ही खिलाए और पहनाए जैसा वह ख़ुद खाता और पहनता है और उसको कोई ऐसा काम करने को न कहे जिसके करने की वह शक्ति न रखता हो, अगर कभी ऐसा काम करने को कहे तो उसमें ख़ुद भी उसका हाथ बटाए।''

इसी के साथ ग़ुलामों की स्वतन्त्रता के अनेक मार्ग खोल दिए, उदाहरणत:

1. ग़ुलामों को स्वतन्त्र करना पुण्य ठहरा दिया इसलिए लोग ख़ुद अपने ग़ुलामों को भी, और पुण्यार्थ दूसरों से ग़ुलाम ख़रीदकर भी आज़ाद करने लगे।

2. कोई व्यक्ति रमज़ान मास का रोज़ा (व्रत) रखकर उसे अकारण तोड़ दे तो उसके प्रायश्चित की अन्य विधियों में से एक विधि एक ग़ुलाम आज़ाद करना भी था।

3. यदि कोई किसी बात पर क़सम खाकर उसे तोड़ देता तो उसके प्रायश्चित विधियों में से एक विधि एक ग़ुलाम को स्वतन्त्र करना है।

4. अरब निवासी पत्नी पर क्रुद्ध होकर कभी-कभी कह दिया करते थे कि तू मेरी माता-तुल्य है, अर्थात् अब तुझसे शारीरिक सम्बन्ध न रखूँगा। इसके बाद वह सम्बन्ध स्थापित करना चाहे तो उसका

(शेष फुटनोट अगले पृष्ठ पर)

जाए और उन्हें कठिन काम में मदद दी जाए और सर्वोपरि यह आदेश देकर कि "तुम सब लोग ईश्वर के ग़ुलाम हो।" इस्लाम और मुहम्मद साहब ने ग़ुलाम प्रथा के वृक्ष को ऊपर से काटने के बजाए उसकी जड़ ही खोद दी। ग़ुलामों की कठिनाई को ही नहीं दूर किया गया, बल्कि उनका दर्जा भी ऊँचा कर दिया गया। इस्लाम के समता के सन्दर्भ में जादुई प्रभाव का इतिहास साक्षी है। भारत में ग़ुलाम वंश का शासन एक ज्वलन्त प्रमाण है। ग़ुलाम शक्ति के बल पर शासक नहीं बने, बल्कि योग्यता के आधार पर सम्राट के पद पर प्रतिष्ठित हुए।[1] मुसलिम सम्राटों ने योग्य ग़ुलामों को पुत्रवत् स्नेह प्रदान किया। इसके विपरीत प्रशासकीय क़ानूनों के बन जाने पर गोरे ईसाइयों का काले ईसाइयों पर ज़ुल्म और सवर्ण हिन्दुओं का करोड़ों हरिजनों के प्रति दुर्व्यव्यहार अभी भी ज्यों का त्यों है।[2] यह (तथाकथित)

(पिछले पृष्ठ का शेष फुटनोट)

प्रायश्चित भी क़सम के प्रायश्चित की तरह एक ग़ुलाम का आज़ाद करना भी है।

5. दासी के साथ व्यभिचार की संभावना अवश्य होती है। इसके बड़े भीषण नैतिक व सामाजिक परिणाम भी होते हैं। ऐसे कुपरिणामों के पूर्व-निवारण के लिए इस्लाम ने दासी को एक सीमा तक, मालिक की पत्नी के समान कर दिया और उससे उत्पन्न संतान को दास या दासी के बजाए 'स्वतन्त्र' घोषित कर दिया।

भारत में तो दास-प्रथा को धार्मिक मान्यता प्राप्त थी। दास जन्मजात दास होता था अत: वह कभी और किसी अवस्था में भी दासता से मुक्त नहीं हो सकता था। देखिए मनुस्मृति का प्रमाण— "शूद्र चाहे ख़रीदा हुआ हो या न हो उससे नौकर का काम ले, क्योंकि ब्रह्मा ने ब्राह्मण की सेवा के लिए ही उसे बनाया है।"

"स्वामी चाहे उसे छोड़ भी दे किन्तु शूद्र सेवावृत्ति से कभी छुटकारा नहीं पा सकता, कारण कि उसकी वह स्वाभाविक वृत्ति है, उससे उसे कोई अलग नहीं कर सकता।" (मनुस्मृति, 8/413-414)

"संग्राम में हराकर लाया हुआ, भोजन के लालच से स्वयं आया हुआ, दासियों के गर्भ से उत्पन्न, ख़रीदा हुआ, किसी का दिया हुआ, बाप-दादे के समय से (घर का) काम करता आया हो, जो दण्ड, ऋण आदि चुकाने के लिए दास हुआ हो, ये सातों दास-योनि हैं। (मनुस्मृति, 8/415)

"काम आ पड़ने पर असंबंधित शूद्र का धन ब्राह्मण बेरोक-टोक ले सकता है क्योंकि उसका अपना धन कुछ भी नहीं है। सब धन उसके स्वामी (अर्थात ब्राह्मण) का है।" (मनुस्मृति, 8/417)

यह थी भारत में दास-प्रथा की अवस्था। अरब में दासों की न जाति थी, न कोई वर्ग था, दास मुक्त भी होते रहते थे। भारत में दास-प्रथा धार्मिक थी। अरब में इस्लाम आया तो दासों की मुक्ति, धर्म का एक पुण्य व पवित्र भाग बन गई। भारत में मुसलमान सन्त आए तो उन्होंने लाखों शूद्रों को ऊपर उठाया, सीने से लगाया, भारत के करोड़ों मुसलमान उन्हीं शूद्रों की सन्तान हैं। अरब और भारत के दासों की सन्तान मुसलमानों का धार्मिक नेता बन गई, किन्तु हिन्दुओं का उच्च वर्ग आज भी शूद्रों के अधिकार के विरुद्ध संघर्ष कर रहा है।

1. ये ग़ुलाम केवल राजनीतिक योग्यता के बल पर शासक व सम्राट ही नहीं बने बल्कि बुद्धिजीवी, विद्वान व धर्माचार्य भी बने। (प्रकाशक)
2. बल्कि वर्तमान भारत में हरिजनों के साथ दुर्व्यवहार, प्रतिरोधात्मक संघर्ष व नर-संहार बढ़ता ही जा रहा है।

ग़ुलामी की प्रथा से कहीं बढ़कर है (जिसका आरोप इस्लाम पर लगाया जाता रहा है।)

मुर्दा जलाना उचित है या दफ़न करना?

मुसलमानों के मुर्दा दफ़न करने को अवैज्ञानिक कहा जाता है, किन्तु मुर्दे को जलाने से दफ़नाना अधिक वैज्ञानिक तथा बुद्धिसंगत है। ईसाई, मुसलमान और यहूदी दफ़न-पद्धति अपनाते हैं और हिन्दू, बौद्ध और सिख अपने मुर्दों को जलाते हैं। पूरी संसार की आबादी के बहुसंख्यक अपने मुर्दों के लिए दफ़न-पद्धति (Burial) अपनाए हुए हैं। विज्ञान प्रमुख और प्रभुत्व वाले यूरोप और अमेरिका में जब दफ़न पद्धति प्रचलित है, तो यह कहना कहाँ तक उचित है कि इस पद्धति (Cremation) से वायु और जल प्रदूषण होता है। शव के जलने से बचे अंग को जल में फेंक देने से जल दूषित होता है। अधिकतर शव अधजला ही रहता है। इस मँहगाई के युग में हिन्दू पद्धति का शवदाह असम्भव है। घी, चन्दन, अगर और अन्य सुगन्धित पदार्थों का प्रयोग अब दाह क्रिया में सम्भव नहीं। डॉक्टरों की रिपोर्ट है कि गंगा और यमुना का जल दूषित हो गया है। अगर दफ़न अवैज्ञानिक है तो हिन्दू संन्यासियों के लिए समाधि प्रथा क्यों अवैज्ञानिक नहीं है? समाधि और दफ़न एक ही है। हिन्दुओं की दाह-पद्धति बड़ी व्ययशील है। दफ़न-पद्धति सरल, कम खर्चीली, सार्वदेशिक और सर्वग्राह्य है। यह पद्धति उत्तरी ध्रुव तक के लिए सरल पद्धति है। ठण्डवासी कैसे हिन्दू पद्धति से अपने मुर्दों को जला सकते हैं। इतिहास के अनुसार मुर्दों का गाड़ना मूल पद्धति है।[1]

पुनर्जन्म सिद्धान्त

पुनर्जन्म सिद्धान्त सर्वमान्य सिद्धान्त के रूप में माना जा रहा है। हिन्दुओं के ईश्वरकृत वेदों में मूलत: पुनर्जन्म का स्पष्ट उल्लेख नहीं है। यह बाद की कल्पना है। हिन्दुओं के घर में हर वाद पर विवाद है। पुनर्जन्म के साथ भी विरोधाभास है। हिन्दुओं के धार्मिक ग्रन्थों में और सामान्य धार्मिक विश्वासों में और विशेषकर गरुड़ पुराण में स्वर्ग-नरक को भी मान्यता है। मरनेवाले के लिए अनिवार्यत: स्वर्गवासी शब्द का प्रयोग हिन्दुओं में किया जाता है। गीता में जहाँ मृत्यु को पुराने वस्त्र

---

1. इस्लामी दफ़न-पद्धति में मुर्दे को नहला-धुलाकर, कफ़न पहनाकर, सुगन्ध लगाकर सम्मान-पूर्वक चपरखट पर सुलाकर क़ब्रिस्तान ले जाते हैं और सम्मानपूर्वक दफ़न करते हैं, मृत नारी देह के भी अंगों की सामान्य-दर्शिता से पूर्ण रक्षा की जाती है। मृत नारी-शरीर का स्पर्श भी पति, भाई, बाप या बेटा के अतिरिक्त, हर किसी के लिए अवैध है।

का त्याग और उसके बाद नए वस्त्र के रूप में अन्य जीवन धारण बतलाकर अर्जुन को इस शरीर की नश्वरता का ज्ञान कराया गया है वहीं इसी गीता में अर्जुन को प्रभावी ढंग से उद्‌बोधन हेतु कहा गया है कि अगर मरोगे तो स्वर्ग में जाओगे और जीतोगे तो राज्य भोगोगे। इससे यह सिद्ध हुआ कि पुनर्जन्म और आवागमन के सिद्धान्त के बावजूद हिन्दुओं के साथ धार्मिक और नैतिक रूप से स्वर्ग-नरक का विश्वास भी सामान्यतः जुड़ा हुआ है। गीता की उपरोक्त उक्ति से यह भी सिद्ध होता है नैतिकता के लिए प्रेरणा स्वर्ग-नरक के विश्वास से ही सम्भव है। आख़िर गीता का उद्देश्य अर्जुन को निमित्त मात्र बनाकर मानव को नैतिक कार्य के लिए प्रेरित ही तो करना था और इसके लिए कृष्ण ने 'स्वर्ग' की उपलब्धि को ही मात्र उपाय समझा। इससे यह भी सिद्ध हुआ कि पुनर्जन्म हिन्दू दर्शन का एक दार्शनिक सिद्धान्त भले ही हो, लेकिन धार्मिक मान्यता स्वर्ग-नरक की ही है। पुनर्जन्म का सिद्धान्त तर्क शास्त्र के भी विपरीत है। कहा जाता है कि यह कलियुग है और पाप बढ़ता जा रहा है। सत्ययुग में पाप कम होते थे। साथ ही साथ यह भी कहा जाता है कि पुण्य से ही मनुष्य योनि प्राप्त होती है और पाप से पशु योनि। यदि ऐसा है तो आजकल जब कलियुग है और पाप चरम सीमा तक बढ़ रहे हैं, नित्य मनुष्यों की आबादी कैसे बढ़ रही है? जब पापी इसी जन्म में किए हुए पाप का एहसास नहीं करता तो पूर्वजन्म का उसे कैसे एहसास कराया जा सकता है? कदापि नहीं। तब इस परिस्थिति में पुनर्जन्म का सिद्धान्त व्यर्थ और अनुपयोगी है। यह नैतिक शास्त्र के भी विरुद्ध है। मान लीजिए कि किसी का नौजवान पुत्र मर जाए और हमें वहाँ शोक सान्त्वना देने के लिए जाना पड़े तो क्या हम उस दुःखी पिता से यह कहें कि पुनर्जन्म में आपने किसी के पुत्र की हत्या की थी। दुःख में स्वयं को और दूसरों को सान्त्वना इसी कथन और विश्वास में निहित है कि धीरज रखिए।

जिज़या का अभिप्राय

जिज़या के बारे में भी ग़ैर-मुसलिमों को बड़ा भ्रम है यह नाममात्र का ग़ैर-मुसलिमों के लिए रक्षाकर था क्योंकि इस्लामी राज्य में ग़ैर-मुसलिम आत्मरक्षा भार से दायित्व मुक्त थे। उनकी रक्षा का भार मुसलमानों पर था। जिज़या तो इस तथ्य का प्रमाण है कि इस्लाम में बलात् धर्म परिवर्तन किसी अवस्था में मान्य नहीं है क्योंकि जिज़या देने के बाद तो ग़ैर-मुसलिम पूर्ण धार्मिक स्वतन्त्रता के अधिकारी बन जाते थे। इतिहास साक्षी है कि ब्राह्मण जो हिन्दुत्व के सर्वेसर्वा हैं जिज़या से मुक्त थे। अकबर,

जहाँगीर और शाहजहाँ के राज्यकाल में जिज़या पूर्णत: उठा लिया गया था।[1]

यूरोप और भारत में इस्लाम के प्रवेश का फल

यूरोप और भारत में इस्लाम के प्रवेश का एक मुख्य कारण भी है और वह है मानवीय आवश्यकता तथा ईश्वरीय प्रेरणा। जहाँ तक यूरोप में इस्लाम के प्रवेश तथा ईसाइयों और मुसलमानों के बीच युद्ध का प्रश्न है ईसाई उसे सलीबी युद्ध (Crusade) कहते हैं और मुसलमान जिहाद। इस युद्ध का स्वरूप कुछ भी हो, ग़ैर-मुसलिम इतिहासकार इस तथ्य को स्वीकार करते हैं कि यूरोप को बर्बर से सभ्य बनाने में इस्लाम का बड़ा योगदान है। मुसलमानों ने यूनानी साहित्य, दर्शनशास्त्र, विज्ञान और गणित की सुरक्षा तथा प्रगति में भी बड़ा योगदान दिया और इनके द्वारा उन्होंने यूरोप को प्रकाशित कर दिया तथा उच्च शिल्प का प्रवेश भी उन्हीं के द्वारा हुआ। मुसलमानों ने वहाँ बड़ी उदारता का प्रदर्शन किया। (इस तथ्य को यूरोप के अनेक ईसाई विद्वान, इतिहासकार व समाज-शास्त्री भी स्वीकार करते हैं।)

मुसलमानों के सम्पर्क से यूरोप को यह लाभ प्राप्त हुआ किन्तु मुसलमानों का सम्पर्क टूट जाने के बाद यूरोप भौतिक उन्नति के शिखर पर तो पहुँच गया किन्तु नैतिक शिखर से गिर गया जिसका परिणाम (नैतिक मूल्यों के अत्यन्त पतन के रूप में) आज हमारे सम्मुख है। समस्त यूरोप और अमेरिका मदिरा, व्यभिचार, जुआ, चोरी-डकैती, हत्या से ग्रस्त है।

---

1. अब जिज़या समस्त मुसलिम राष्ट्रों में कहीं भी नहीं है। परन्तु जिज़या को लेकर भ्रष्ट प्रचार हो रहा है और राजेन्द्र जी को सफाई देनी पड़ रही है। अनेक मुसलिम देशों में ईसाई हैं और हिन्दू भी हैं किन्तु किसी देश में भी उनसे जिज़या नहीं लिया जाता। बंगला देश में भी हिन्दू हैं और पाकिस्तान में भी, इन देशों में जिज़या नहीं लिया जाता है। हम हिन्दू भाइयों को अवगत कराते हैं कि बंगला देश और पाकिस्तान के हिन्दुओं से जिज़या इसलिए नहीं लिया जाता कि उन देशों को, स्वयं इस्लामी विधान के अनुसार, ग़ैर-मुसलिमों से जिज़या लेने का कोई अधिकार नहीं है।

   यदि पाकिस्तान का संविधान शुद्ध इस्लामी हो गया तो हिन्दुओं के अधिकार और भी सुरक्षित हो जाएँगे। राज्य को उनके धर्म, धार्मिक रस्म व रिवाज, भाषा, संस्कृति एवं सभ्यता किसी चीज़ में हस्तक्षेप का अधिकार न होगा। वह पाकिस्तान के ऐसे ही नागरिक होंगे जैसे मुसलमान।

   इस्लामी राज्य की प्रजा तीन प्रकार की होती है। (1) जो लड़ते-लड़ते विजित हो गई और इस्लाम स्वीकार न करके अपने ही धर्म पर रहना चाहे उस पर जिज़या है। (2) जो युद्ध द्वारा विजित होने से पहले सन्धि कर ले। सन्धि किन्हीं शर्तों पर हो सकती है। यदि जिज़या पर सन्धि न हो अन्य शर्तों पर हो तो उन शर्तों के विरुद्ध जिज़या नहीं लिया जा सकता। (3) इस्लामी राज्य के वे ग़ैर-मुसलिम नागरिक जो न युद्ध में विजित होकर प्रजा बने हों, न सन्धि द्वारा, उनसे भी जिज़या नहीं लिया जा सकता।

यूरोप में बर्बरता की जगह सभ्यता और मानवता की आवश्यकता थी और इसके लिए ईश्वर की प्रेरणा से वहाँ इस्लाम का प्रवेश हुआ, जिसने वहाँ नैतिकता और समता की रोशनी फैलाई और ईसाई धर्म की कुत्सितकृत्यों को दूर करने के लिए मार्टिन लूथर आदि धर्म सुधारकों को प्रेरणा दी। उसी प्रकार भारत में इस्लाम का प्रवेश मानवता की आवश्यकता और ईश्वरीय प्रेरणा की आपूर्ति के लिए हुआ।

भारत में तो सर्वोच्च सभ्यता का विकास हो चुका था किन्तु सभ्यता की पराकाष्ठा ही तो सब कुछ नहीं। अनैतिकता, राजनीतिक कलह, नीची जातियों के प्रति घृणा चरम सीमा को पहुँच गई थी। धर्म में भ्रष्टाचार व्याप्त था, बौद्धों के मठ दुराचार, व्यभिचार और जादू-टोना के केन्द्र बन गए थे। यही हाल हिन्दू धर्म का था। वे अपने प्राचीन धर्म के आदर्श से विमुख हो गए थे, वे सर्वथा संकुचित हृदय और संकीर्ण मस्तिष्क हो गए थे। गीता के शब्दों में, धर्म की ग्लानि हो रही थी। ऐसी दशा को ईश्वर सहन नहीं कर सकता था।

भारत में सन् 712 ई० में इस्लाम का प्रथम प्रवेश इस वास्तविक प्राकृतिक कारण से तथा अन्य राजनीतिक कारणों से सिन्ध में हुआ जो निमित्त मात्र थी। सरलता या कठिनाई से मुसलमानों ने सिन्ध को विजय कर लिया और उन्होंने सिन्ध में अपना शासन स्थापित कर लिया। किन्तु वह शीघ्र ही हिन्दुओं के प्रति अति उदार हो गए और सत्ता भी उन्हीं को सौंप दी। यह एक प्रकार से हिन्दुओं को मुसलमानों की मैत्रीपूर्ण चेतावनी थी कि वह अब भी सँभल जाएँ, परन्तु हिन्दू सँभले नहीं वे विनाश ही के मार्ग पर सरपट दौड़ते रहे। तीन सौ वर्ष तक ईश्वर ने उन्हें अवसर प्रदान किया, किन्तु वे सुधरे नहीं, ईश्वर के नाम पर असंख्य धन मन्दिरों में जमा हो गया और उसके नाम पर धर्म के ठीकेदारों द्वारा मन्दिरों में देवदासियों का नाच (और यौन-शोषण) धार्मिक अनुष्ठान के रूप में मान्य हो गया था। परिणामत: (इस कुष्ठित समाज व प्रणाली पर) ईश्वर के प्रकोप (और चेतावनी) के रूप में भारत में महमूद ग़ज़नवी का प्रवेश हुआ। वह सत्रह बार भारत आया और घोर निद्रा में पड़े हुए हिन्दुओं को झिंझोड़ कर चला गया कि कदाचित् अब भी हिन्दू जाग जाएँ पर हिन्दू जागे नहीं। ईश्वर ने उन्हें डेढ़ सौ वर्ष का और अवसर प्रदान किया जब भी हिन्दू न सँभले तो ईश्वर की प्रेरणा से मुहम्मद ग़ोरी ने उनकी सत्ता ही समाप्त कर दी।[1]

---

1. ऐतिहासिक प्रमाणों से विदित है कि ईश्वर अपनी धरती पर अत्याचार, कुकर्म, शोषण व व्यभिचार को बहुत लम्बी अवधि तक चलते नहीं रहने देता। सुधार का अवसर, समय और ढील अवश्य देता है जिस में कुछ शताब्दियाँ भी बीत सकती हैं किन्तु फिर वह अवज्ञाकारी व निष्ठुर क़ौम को परास्त करके, किसी उच्चतर एवं सक्षम मानव-वर्ग की सत्ता उसपर स्थापित कर देता है। इस ईश्वरीय नियम को "Check and Balance" का नियम भी कहा जाता है। अत: बाहरी आक्रमणों को इस परिप्रेक्ष्य में भी देखना चाहिए, न कि मात्र राजनीतिक व भौतिक परिप्रेक्ष्य में। (प्रकाशक)

कई शताब्दियों तक भारत पर मुसलमानों का आधिपत्य रहा और आज वे भारत को अपना देश मानकर यहाँ रह रहे हैं। वे भारत में पैदा होते हैं, जीते हैं और मरते हैं, संसार भी उन्हें भारतीय मानता है।

मुसलमानों का अस्तित्व भारत के लिए भी वरदान ही सिद्ध हुआ। उत्तर और दक्षिण भारत की एकता का श्रेय मुसलिम साम्राज्य, और केवल मुसलिम साम्राज्य को ही प्राप्त है। मुसलमानों का समतावाद भी हिन्दुओं को प्रभावित किए बिना नहीं रहा। अधिकतर हिन्दू सुधारक जैसे रामानुज, रामानन्द, नानक, चैतन्य आदि मुसलिम-भारत की ही देन है। भक्ति आन्दोलन जिसने कट्टरता को बहुत कुछ नियन्त्रित किया, सिख धर्म और आर्यसमाज जो एकेश्वरवादी और समतावादी हैं, इस्लाम ही के प्रभाव का परिणाम हैं। समता सम्बन्धी और सामाजिक सुधार सम्बन्धी सरकारी क़ानून जैसे अनिवार्य परिस्थिति में तलाक़ और पत्नी और पुत्री का सम्पत्ति में अधिकार आदि इस्लाम प्रेरित ही हैं।

बहुपत्नीत्व

बहुपत्नीत्व विषय को लेकर पैग़म्बर साहब और इस्लाम पर आक्षेप किया जाता है जो सर्वथा अनुचित है। इसका प्रमाण मुहम्मद (सल्ल०) से पहले के पैग़म्बरों में भी मिलता है, किन्तु हम उनका उल्लेख नहीं करेंगे बल्कि हिन्दुओं के ही महापुरुषों के उदाहरण प्रस्तुत करेंगे।

कृष्ण जी जो हिन्दू धर्म के अवतारों में पूर्ण अवतार माने जोते हैं उनकी आठ पटरानियाँ और सोलह सौ रानियाँ थीं। उनके अलावा अनेक गोपियाँ तथा राधा से भी उनका गाढ़ा सम्बन्ध वर्णित है। तथापि उनको योगीराज माना जाता है और इस बहुपत्नीत्व की आध्यामिक व्याख्या की जाती है। उनका जीवन जल में कमल जैसा निर्लिप्त माना जाता है। अर्थात् प्रत्यक्ष बहुपत्नीवाले होते हुए भी वे उनसे विरक्त थे। राम जी तो एक पत्नीधारी थे किन्तु उनके पिता दशरथ बहुपत्नीवादी थे। महाभारत के नायक अर्जुन के पिता की भी एक से अधिक पत्नियाँ थीं।

जहाँ तक इस्लाम के पैग़म्बर मुहम्मद साहब का प्रश्न है, उन्होंने 25 वर्ष की आयु में 40 वर्षीया विधवा ख़दीजा से विवाह किया और ढलती हुई अवस्था (50 वर्ष की आयु) तक एक पत्नीधारी रहे। उस अवस्था में जब इन्द्रिय सुख की इच्छा प्र:य; समाप्त हो जाती है। उनके अन्य विवाह इस तथ्य को सिद्ध करते हैं कि या तो उन स्त्रियों को संरक्षण की आवश्यकता थी या उनके माध्यम से इस्लाम का उद्देश्य सिद्ध करना था, न कि इन्द्रिय सुख-विलास। इसके अनेक प्रमाणों में एक प्रमाण यह है कि एक रात्रि को उनकी पत्नी आइशा (रज़ि०) को संशय हुआ

कि वे उनकी कोठरी में नहीं हैं कदाचित् किसी दूसरी पत्नी के यहाँ गए हैं किन्तु उठकर देखा तो ज्ञात हुआ कि वे भूमि पर माथा टेके ईश्वरोपासना में लीन हैं।[1]

जनसाधारण का बहुपत्नीत्व

इस्लाम ने जनसाधारण को चार पत्नियों तक की जो अनुमति दी है उसपर आक्षेप करनेवाले उसके तथ्य से अवगत नहीं हैं। पहली बात तो यह जान लेनी चाहिए कि चार पत्नी करने की आज्ञा नहीं है, केवल अनुमति है। दूसरी बात यह कि चार पत्नियों की अनुमति किस अवस्था में किन उद्देश्यों से दी गई? इस्लाम से पहले अरब निवासी दस-दस पत्नियाँ कर लेते थे और उनकी आवश्यकताएँ पूरी नहीं कर सकते थे और उनको कष्ट देते थे तथा उनपर अत्याचार करते थे और

---

1. श्री राजेन्द्र जी ने मुहम्मद (सल्ल०) के बहुपत्नीत्व का औचित्य सिद्ध कर दिया है, परन्तु मुहम्मद (सल्ल०) सम्बन्धी यह विशिष्ट प्रसंग है इसलिए हम चाहते हैं कि यह और स्पष्ट हो जाए। जैसाकि राजेन्द्र जी ने बताया है स्त्रियों का संरक्षण भी कारण था तथा इस्लाम का उद्देश्य भी। इसका कुछ विवरण निम्नलिखित है।

(i) मुहम्मद (सल्ल०) का देश और समाज धार्मिक, नैतिक और राजनीतिक दृष्टि से इतना अधिक पतन-ग्रस्त था कि उसका पूर्ण क्रान्ति द्वारा आदर्श देश और समाज बनाना अति आवश्यक एवं कठिन और महान् कार्य था। और स्थिति यह थी कि सारा देश मुहम्मद (सल्ल०) का विरोध कर रहा था। इस अवस्था में आवश्यकता थी कि जो मित्र और सहायक थे उनके सम्बन्ध को और दृढ़ बनाया जाए। जो शत्रु थे वे मित्र न बन सकें तो जहाँ तक सम्भव हो उनकी शत्रुता को कम किया जाए।

(ii) मुहम्मद (सल्ल०) की दो पत्नियाँ हज़रत आइशा और हज़रत हफ़्सा आपके परम् मित्र और सहचर हज़रत अबू बक्र और हज़रत उमर की पुत्रियाँ थीं। हज़रत ज़ैनब मुहम्मद (सल्ल०) की फूफी की पुत्री थीं। आपने उनका विवाह अपने दास हज़रत ज़ैद से कर दिया था। दोनों में निर्वाह न हो सका और ज़ैद ने तलाक़ दे दी, ज़ैद हज़रत मुहम्मद (सल्ल०) के दास-पुत्र और मुँह-बोले बेटे थे। अरब में कुप्रथा थी कि मुँह-बोले बेटे को पारिवारिक व सामाजिक स्तर पर क़ानूनी तौर पर सगे बेटे का स्थान प्राप्त था। उसकी विधवा या तलाक़शुदा पत्नी से मुँह बोला बाप विवाह न कर सकता था। इस्लाम ने इस रीति का खण्डन किया और व्यावहारिक स्तर पर इसके उन्मूलन के लिए ज़ैनब से विवाह कराकर, ख़ुद पैग़म्बर का एक जीता-जागता नमूना तत्कालीन समाज और अपार भविष्य के लिए भी क़ायम कर दिया। हज़रत रेहाना, जुवैरिया और सफ़ीया यहूदी रईसों की पुत्रियाँ थीं। यहूदी मुहम्मद (सल्ल०) के शत्रु थे, अतः इन तीनों महिलाओं के मान की रक्षा के लिए तथा यहूदियों की शत्रुता को कम करने के लिए मुहम्मद (सल्ल०) का इनसे विवाह आवश्यक था। हज़रत उम्मे हबीबा मक्का के प्रमुख सरदार और आपके बड़े शत्रु अबू सुफ़यान की पुत्री थीं। इनके साथ विवाह हो जाने से अबू सुफ़यान की शत्रुता मन्द पड़ गई। हज़रत उम्मे सलमा मक्का के सरदार और मुहम्मद (सल्ल०) के कट्टर शत्रु की पुत्री थीं। इन विवाहों के बाद बहुत सारे सम्बन्धित क़बीलों की इस्लाम दुश्मनी कम हो गई।

(iii) मुहम्मद (सल्ल०) जिस धार्मिक, नैतिक और सांस्कृतिक क्रान्ति के लिए ईश्वर की ओर से नियुक्त

(शेष फुटनोट अगले पृष्ठ पर)

पत्नियों के बीच न्याय-संगत व्यवहार नहीं करते थे। इन बुराइयों को दूर करने के लिए चार पत्नी से अधिक पर प्रतिबन्ध लगा दिया गया तथा चार की अनुमति भी इस शर्त के साथ दी गई कि उनके साथ समता और न्याय-संगत व्यवहार किया जाए।

यहाँ यह बात भी ज्ञातव्य ह कि जिस समाज का बहुपत्नित्व स्वभाव बन गया था उसको यह आज्ञा दे दी जाती कि वह एक पत्नी से अधिक न करे तो वह इस आज्ञा का पालन न कर सकता, चोरी छिपे इसकी अवहेलना करता (आज के 'सुसभ्य' समाज में भी ऐसा बहुत है) और शुद्ध समाज न बन पाता जो इस्लाम का ध्येय था, सर्वथा दूषित हो जाता। एक से अधिक पत्नी की आवश्यकता उसी समय के अरब समाज को न थी अब भी होगी, दूसरे देशों के समाज को भी हो सकती है। व्यक्तिगत रूप से हमारे समाज को भी हो सकती है अत: हर सुबुद्धि स्वीकार करेगी कि समाज को शुद्ध रखने के लिए इस्लाम का बहुपत्नीत्व का नियम अति दूरदर्शिता पर आधारित है।[1]

इस विवेचन से यह तथ्य स्पष्ट हो गया कि एक से अधिक पत्नी की अनुमति द्वारा दस-दस पत्नियों के रखने का निषेध कर दिया गया तो दूसरी ओर समाज को दूषित करनेवाले व्यभिचार, वेश्यावृत्ति तथा रखैल पद्धति का द्वार भी बन्द कर

(पिछले पृष्ठ का शेष फुटनोट)

हुए थे उसके लिए केवल पुरुषों की शिक्षा और प्रशिक्षण पर्याप्त न था, स्त्रियों के लिए भी इसकी आवश्यकता थी और इस्लामी सभ्यता के अनुसार पुरुषों और स्त्रियों का परस्पर सम्पर्क निषिद्ध है। इसलिए मुहम्मद (सल्ल०) स्त्रियों को शिक्षा नहीं दे सकते थे। इसके अतिरिक्त स्त्री सम्बन्धी बहुत से ऐसे प्रसंग भी होते हैं जिनको स्त्रियाँ पुरुषों से न कह सकती हैं न पुरुष उनकी शिक्षा दे सकते हैं। इसी आवश्यकता की पूर्ति के लिए मुहम्मद (सल्ल०) ने विभिन्न आयु और योग्यताओं की स्त्रियों से विवाह किया तथा उनको शिक्षा देकर इस योग बना दिया कि वे स्त्रियों को उनके विषय की शिक्षा दे सकें। मुहम्मद (सल्ल०) की पत्नियों में हज़रत आइशा और हज़रत सलमा बड़ी विद्यावती हुईं। मुहम्मद (सल्ल०) के वचन को ''हदीस'' कहते हैं, हदीस की पुस्तकों में आपकी पत्नियों की बयान की हुई बहुसंख्य हदीसें हैं।

ये उद्देश्य थे मुहम्मद (सल्ल०) के अधिक विवाह के। मुहम्मद (सल्ल०) को इन्द्रिय वासना पर तो ऐसा अधिकार था कि 25 वर्ष आपने अपनी बूढ़ी पत्नी ख़दीजा के साथ व्यतीत किए, उनके देहान्त के बाद 'सौदा' नामक स्त्री से विवाह किया वे भी बूढ़ी विधवा थीं, 4 वर्ष उनके साथ व्यतीत किए। अन्य विवाह 53 वर्ष की आयु के उपरान्त किए जब इन्द्रिय कामना क्षीण हो जाती है। इन पत्नियों के होते रात्रि में आप इतनी नमाज़ पढ़ते कि पाँव सूज जाते।

1. वेश्यावृति, देह व्यापार, अवैध व अनैतिक यौन-सम्बन्ध, मान्यता प्राप्त वेश्यालय, 'काल-गर्ल्ज़' की कुप्रथा—और इस सबके फलस्वरूप अनगिनत नैतिक विकार सामाजिक अपराध तथा उनसे होनेवाली असंख्य हानियाँ, समस्याएँ बहुपत्नीत्व को वर्जित कर देने के ही फल हैं। इस्लाम ने बहुपत्नीत्व की अनुमति देकर मुसलिम पुरुष, नारी, परिवार और समाज, सबको इन कुपरिणामों से बचा लिया। (प्रकाशक)

दिया गया। चार की अनुमति, सब पत्नियों में समता और न्याय का प्रतिबन्ध लगाकर एक प्रकार से अनावश्यक विवाह पर भी बन्धन लगा दिया गया। इस बन्धन के बाद स्वयं चार विवाह भी रुक गए।

यह बात भी ज्ञातव्य है कि यह धार्मिक नियम था और समाज धर्मनिष्ठ था अतएव समाज इस नियम का ईमानदारी से पालन करता था। किन्तु जो लोग एक पत्नीत्व के समर्थक और एक से अधिक के विरोधी हैं उनका आचरण क्या है और उनके समाज की दशा क्या है? इस्लाम के बहुपत्नीत्व के नियम के विरुद्ध सबसे अधिक प्रचार यूरोप और अमेरिका के ईसाइयों ने किया है।

इन देशों में एक से अधिक पत्नी पर प्रतिबन्ध है किन्तु व्यभिचार का द्वार पूरी तरह खुला हुआ है। रखैल हैं, सोसाइटी गर्ल हैं, कालगर्ल हैं, वेश्याएँ हैं, क्लब हैं, होटल हैं। जनसाधारण भी व्यभिचारी, प्रमुख वर्ग भी व्यभिचारी, पार्लियामेण्ट के सदस्य भी व्यभिचारी, मन्त्री भी व्यभिचारी तथा पादरी भी व्यभिचारी। जो अवस्था पुरुषों की है वहीं स्त्रियों की है। कोई वर्ग ऐसा नहीं जिसकी स्त्रियाँ व्यभिचारिणी न हों। जहाँ व्यभिचार का ऐसा प्रचलन हो वहाँ एक से अधिक पत्नी का खटराग क्यों पालें? अब तो पुरुषों और स्त्रियों का ऐसा वर्ग भी उत्पन्न हो गया है जो एक विवाह भी करना नहीं चाहता, स्वाधीनतापूर्वक काम आनन्द भोगना चाहता है।

हमें अपने देश पर भी एक दृष्टि डालनी चाहिए। हमारा देश भी इन बुराइयों से सर्वथा मुक्त नहीं है, धर्म प्रभावहीन हो गया है और वैधानिक नियम प्रभावकारी नहीं हैं।[1]

हिन्दू बन्धु सोचें, ईश्वर के पूर्णावतार कृष्ण जी स्वयं बहु पत्नीवाले थे और

---

1. इस्लाम हर मूल्य पर समाज को शुद्ध रखना चाहता है और व्यभिचार सब कर्मों से अधिक दूषित करनेवाला कर्म है। इस्लाम ने व्यभिचार को धार्मिक पाप और नैतिक एवं सामाजिक अपराध ठहरा दिया और उसका कड़ा दण्ड निर्धारित कर दिया। अफसोस कि समाज को शुद्ध रखने और नारी का अपमान व शोषण रोकने में सक्षम इस दण्ड को, बर्बरता का नाम देकर इस्लाम को आक्षेपित व बदनाम करने का प्रयास हर स्तर पर जारी रखा गया है। वैसे अब (1999 ई०) भारतीय राजनेता यहाँ तक कि भाजपा के वरिष्ठ नेता बलात्कार की सज़ा मृत्युदण्ड देने का क़ानून लोकसभा में पारित कराने का एलान कर चुके हैं।

यूरोप के नामधारी सभ्य और मानव प्रेमी इस सज़ा को कठोर ही नहीं अमानवीय सज़ा कहते हैं। वे ऐसा इसलिए कहते हैं कि वे यह मानते ही नहीं कि व्यभिचार कोई निषिद्ध कर्म है। व्यभिचार यूरोप निवासियों के जीवन का एक मुख्य अंग बन गया है। अब से कोई तीन-साढ़े तीन साल पहले की बात है कि डब्लन यूनीवर्सिटी के एक प्रोफेसर की अध्यक्षता में यूरोप के विश्व विख्यात विधि विशेषज्ञों का एक मण्डल इस्लामी क़ानून मुख्यत: दण्डविधान का अध्ययन तथा उसपर वार्तालाप करने के लिए सऊदी अरब आया। उनको स्पष्ट रूप से अनुमति दे दी गई कि वह अपराध विभाग में जाकर देखें

(शेष फुटनोट अगले पृष्ठ पर)

उनके पौराणिक और ऐतिहासिक महापुरुष बहुपत्नीधारी थे। हिन्दू धर्म में तो बहुपत्नीत्व के साथ बहुपतित्व क़ा भी उल्लेख है। पाण्डवों की पत्नी बहुपतीत्ववाली थी। कोई भी विचारवान निष्पक्ष व्यक्ति इस निष्कर्ष पर पहुँचे बिना न रहेगा कि इस्लाम का बहुपत्नीत्व का नियम ग़ैर-मुसलिमों के अवैध वेश्यावृत्ति और परोक्ष रखैलवाद से; समाज व स्त्री वर्ग तथा वेश्या और रखैल से उत्पन्न निर्दोष सन्तानों के लिए श्रेयष्कर और गौरवपूर्ण है।

(पिछले पृष्ठ का शेष फुटनोट)

कि इस देश में अपराध की क्या अवस्था है? उन्होंने वहाँ जाकर देखा तो आश्चर्य चकित रह गए। यूरोप के जिन नगरों की जनसंख्या अरब के जिन नगरों की जनसंख्याओं के बराबर है अपराधों की संख्या में एक हज़ार और एक का अन्तर है, अर्थात् यूरोप में जहाँ एक हज़ार अपराध होते हैं अरब में केवल एक अपराध ही होता है।

आगन्तुकों के निकट व्यभिचार का दण्ड पत्थर मार-मारकर मार डालना और चोर का हाथ काट देना अमानवीय दण्ड था। उनसे कहा गया कि वे एक करोड़ डालर किसी व्यक्ति को देकर जहाँ चाहें भेज सकते हैं वह सुरक्षित निश्चित स्थान पर पहुँच जाएगा जबकि यूरोप में प्रतिदिन डकैती होती है तथा अनेकों लोग मारे जाते हैं।

इस्लामी विधान के गुण और प्रभाव से अवगत होकर वे लोग अपनी धारणा पर बहुत लज्जित हुए और वापस जाकर प्रेस कान्फ्रेंस में कहा कि इस्लामी विधान ही अपराध को समाप्त कर सकता है तथा निःसन्देह मुसलमान अपने विधान पर गर्व कर सकते हैं।

अन्त में यह भी देख लें कि हिन्दू धर्म में व्यभिचार के विषय में क्या विधान हैं? मनुस्मृति के कुछ नियम कदाचित् निम्न प्रकार है–

कोई शूद्र द्विजाति (ब्राह्मण, क्षत्रीय, वैश्य) की किसी स्त्री के साथ संभोग करे तो उसे प्राण दण्ड देना चाहिए। (मनुस्मृति, 8/359)

पराई स्त्री के साथ सम्भोग में प्रवृत्त पुरुषों को डरानेवाले दण्ड देकर और अंग-भंग करके राजा उसे देश से निकाल दे। (8/352)

गृहस्थ ने जिस पुरुष को अपनी पत्नी से बात करने से मना कर दिया हो, वह उस गृहस्थ की पत्नी से बात न करे। मना किया हुआ पुरुष यदि बात करे तो वह सोलह माशा सोना दण्ड पाने के योग्य है। यह विधि नटों की स्त्री के लिए नहीं है और भार्या से अपनी जीविका चलानेवाले के लिए भी नहीं है। क्योंकि वे स्वयं ही अपनी स्त्रियों का अन्य पुरुष से सम्बन्ध कराते तथा स्वयं पीछे रहकर उनसे व्यभिचार कराया करते हैं। (8/362)

जो मनुष्य किसी कन्या के साथ बलात्कार करके उसे दूषित करता है वह तत्काल वध के योग्य होता है। किन्तु कन्या की इच्छा से दूषित किया हो और वह उसका स्वजातीय हो तो वह वध के योग्य नहीं होता। (8/364)

उत्तम जाति के पुरुष के साथ संभोग करने की इच्छा से उसकी सेवा करनेवाली कन्या को कुछ दण्ड न करे। किन्तु हीन जाति के पास जानेवाली कन्या का यत्नपूर्वक नियमन करे। (8/365)

उत्तम वर्ण की कन्या के साथ सम्भोग करनेवाला नीच वर्ण का पुरुष वध के योग्य है। अपने समान वर्ण की कन्या के साथ सम्भोग करनेवाला हो तो धन देकर, यदि उसका पिता उस धन से संतुष्ट हो, विवाह कर ले। (8/366)

इस्लामी परदे का प्रश्न

प्रश्न किया जाता है कि क्या इस्लाम द्वारा प्रतिपादित परदा पद्धति पुरुष और स्त्री में भेद मूलक व स्त्रियों के स्वास्थ्य तथा उन्नति में बाधक नहीं है?

हमारा उत्तर यह है कि इस्लामी परदा सर्वथा उचित और अति आवश्यक है। जहाँ तक पुरुष और स्त्री की समानता का प्रश्न है इस्लाम ही ने सर्व प्रथम स्त्री जाति को सम्पत्ति अधिकार प्रदान किया, अनिवार्य परिस्थिति में खुलअ (पतित्याग) का अधिकार दिया और हर अवस्था में महर (विवाह के समय पति द्वारा देय स्त्री-धन) पाने का अधिकार निर्धारित किया। इसके विपरीत हिन्दुओं में तो विधवाओं को जीवित जला दिया जाता था मानो उनका अपना स्वतन्त्र अस्तित्व ही न था। इस्लाम में विधवाओं को हक़ है कि पति के मरने (या तलाक़ पाने) के 4 मास दस दिन बाद अपना दूसरा विवाह कर लें और सुखपूर्वक जीवन व्यतीत करें।[1] हिन्दू धर्म की विधवा को दूसरा विवाह करने का अधिकार न था और न सुखपूर्वक जीवन व्यतीत करने का उसे अधिकार था। उसको अपने परिवार में ही तिरस्कृत और अपमानित होकर रहना पड़ता था।

ईसाई देशों में अभी तक स्त्रियों का सम्पत्ति-अधिकार पूर्णतया मान्य नहीं हो पा रहा है। एक समय था जब यूरोप के विद्वानों में इस विषय में वाद-विवाद हुआ करता था कि स्त्रियों में आत्मा है या नहीं।

परदा स्त्रियों के स्वास्थ्य तथा उन्नति में बाधक क्यों है? क्या स्वास्थ्य के लिए यह अनिवार्य है कि स्त्रियाँ बेपरदा घूमा करें? स्त्रियों को केवल परदे की आज्ञा है। वह अपने पतियों के साथ परदे में रहकर भी सैर कर सकती हैं, इसकी कोई मनाही नहीं है।

मुसलमान स्त्रियाँ स्वस्थ नहीं रहतीं तो स्वस्थ बच्चों को जन्म कैसे देती हैं और मुसलमान स्वस्थ कैसे होते हैं? मुसलमानों की त्वरित दिग्विजय से संसार चकित रह गया था, क्या वह मुसलमान माताओं की सन्तान न थे? उनके समय में तो कठोर परदा था।

स्त्रियों के स्वास्थ्य, उन्नति, समता, समानता आदि का प्रश्न यूरोप का उठाया हुआ है जिसने स्त्रियों को काम-वासना की सामग्री बना रखा है। हर धर्म और प्राचीन सभ्यता में धन कमाना पुरुषों का कर्त्तव्य रहा है और स्त्रियों का क्षेत्र घर रहा है। हिन्दू धर्म और उसकी सभ्यता में कब स्त्रियों पर कमाने का बोझ डाला

---

1. यह 4 मास 10 दिन की रोक इसलिए है कि यदि वह गर्भवती होने के प्रारम्भिक चरण में ही विधवा (या तलाक़शुदा) हो गई हो तो इस अवधि में उसका गर्भवती होना स्पष्ट हो जाए और नए विवाह से स्थापित दाम्पत्य सम्बन्ध पूर्व-पति की सन्तान से उत्पन्न होनेवाली समस्याओं की हानिकारकता व जटिलता से प्रभावित होने से बच जाए।

गया है? रहा पुरुषों और स्त्रियों की समानता और समान अधिकार का प्रश्न तो स्त्रियों के अधिकार के समर्थक पहले ईश्वर से माँग करें कि वह पुरुषों और स्त्रियों को समान बनाए। पुरुष भी सन्तान को जन्म दिया करें। स्त्रियाँ ही यह कष्ट क्यों उठाएँ।

शरीर-विज्ञान और मनोविज्ञान के अनुसार स्त्रियाँ शरीर और मन से कोमल होती हैं। परदा उनकी रक्षा के लिए सर्वथा उपयोगी है। यह उनको कुदृष्टि से बचाता है। कुदृष्टि के परिणाम कभी-कभी भयंकर होते हैं। अपहरण और बलात्कार कुदृष्टि के ही परिणाम होते हैं। परहेज़ न करके बीमार होना कोई बुद्धिमानी नहीं है।[1]

गौ-वध का प्रश्न

प्रश्न किया जाता है कि इस्लाम सूअर के मांस पर तो प्रतिबन्ध लगाता है किन्तु गाय के मांस पर नहीं। क्या यह उचित है? यह प्रश्न सर्वथा बुद्धि-विरुद्ध है।

सामान्य मनुष्य भी सूअर और गाय के भेद को समझता है। सूअर कितना घृणित पशु है? गाय तो हिन्दू-मुसलमान सब अपने घरों में पालते हैं, लेकिन सूअर कितनी गन्दगी में पलता है किसे नहीं मालूम? सूअर के मांस पर इस्लाम ने सर्वथा उचित प्रतिबन्ध लगाया है।[2] रहा गौ मांस का प्रश्न तो गौ मांस को अवश्य इस्लाम ने

---

1. स्त्रियों के परदे पर स्त्रियों के ऐसे ही अभिभावक आक्षेप करते हैं जिनकी दृष्टि में स्त्रियों के स्त्रीत्व और सतीत्व का कोई मूल्य नहीं है। वे उन्हें पुरुषों की काम-वासना की पूर्ति का साधन मात्र समझते हैं। ऐसे लोग इस्लाम के परदे के नियम की सार्थकता क्या समझेंगे?

   स्त्री में पुरुष के लिए प्राकृतिक आकर्षण है। अतः पुरुष स्त्री को देखकर स्वभावतः आकर्षित होता है।

   स्त्रियों की बेपरदगी ही व्यभिचार का द्वार है और इस्लाम इसको परदा द्वारा बन्द करता है। स्त्रियों की सबसे मूल्यवान निधि उनका सतीत्व है और इस्लाम उसका रक्षक है और परदा विरोधी उसके दुश्मन हैं।

   भारत परदे से अवगत न था। मुसलमान भारत आए, हिन्दुओं ने देखा कि मुसलमान स्त्रियाँ परदे में रहती हैं तो परदे की उपयोगिता उनकी समझ में आई और हिन्दुओं में भी परदा प्रचलित हुआ। वर्तमान समय में हिन्दुओं में यह भावना उत्पन्न हुई कि परदा तो मुसलमानों का अनुकरण और हमारी प्राचीन सभ्यता के विरुद्ध है अतः परदा उठा दिया गया। इसका परिणाम यह हो रहा है कि युवतियों ने ओढ़नी तक का परित्याग कर दिया है। जो युवतियाँ और स्त्रियाँ ब्लाउज और साड़ियाँ पहनती हैं उनका एक फुट का ब्लाउज ऊपर गले से सीने तक खुला हुआ और नीचे सीने की जड़ से नाभि के भी काफी नीचे तक पेट और पीठ खुली हुई, साड़ी शरीर से चिपकी हुई, अंग-अंग व्यक्त। इसी का परिणाम है जो हम समाचारपत्रों में युवतियों और स्त्रियों से बलात व्यभिचार तथा अपहरण की सूचनाएँ देखते रहते हैं। यही अवस्था रही तो भारत की भी वही दशा होगी जो यूरोप-अमेरिका की हो रही है जहाँ मनुष्य पशु बन गया है, बल्कि पशु से भी निम्नतर।

2. राजेन्द्र नारायण लाल जी ने केवल गौ-वध के प्रश्न को लेकर संक्षेप में वार्ता की है। परन्तु इस प्रश्न के साथ

(शेष फुटनोट अगले पृष्ठ पर)

विहित ठहराया है किन्तु अनिवार्य नहीं। इस्लाम के सभी नियम बुद्धि, ज्ञान और तर्क पर आधारित हैं केवल धार्मिक भावना पर नहीं। वह एक शुद्ध एकेश्वरवादी धर्म है। वह गाय को पूज्य नहीं मानता।।

जहाँ तक हिन्दू-मत का प्रश्न है सिन्धु घाटी की सभ्यता वाले हिन्दुओं ने गाय को धार्मिक मान्यता नहीं दी थी। आर्यों ने 'जो कृषि सभ्यता के जनक थे' गाय को आर्थिक दृष्टि से बध्य माना था किन्तु विशेष उत्सवों पर आर्य बैल के मांस का प्रयोग करते थे। कालान्तर में यज्ञों में अत्याधिक जीव हिंसा होती थी। गौ-मेघ यज्ञ तक हो जाता था। बौद्ध अहिंसा इसी अत्याधिक हिंसा की प्रतिक्रिया स्वरूप प्रकट हुई। किन्तु वह भी व्यवहारिक सिद्ध नहीं हुई। प्राय: अधिक बौद्ध मांसाहारी हैं। भैसों और बकरों का बलिदान तो अब तक देवी-देवताओं पर हो रहा है।[1]

संसार की सभी जातियाँ चाहे वे सभ्य हों अथवा असभ्य तथा संसार के सभी

(पिछले पृष्ठ का शेष फुटनोट)

जीव हिंसा का प्रश्न भी जोड़ दिया गया है और इस्लाम पर यह आक्षेप भी किया जाता है कि वह जीव हिंसा की अनुमति देता है। इसलिए आवश्यक है कि इस प्रसंग की सार्थकता पर भी विचार कर लिया जाए।

वास्तव में यह विषय गौ-रक्षा के प्रश्न को भावपूर्ण व उत्तेजक बनाने के लिए उठाया जाता है। जो बुद्धि, ज्ञान-विज्ञान, कार्य, व्यवहार किसी के भी अनुकूल नहीं है।

वास्तविकता तो यह है कि स्वयं हिन्दू धर्म में मांसाहार की अनुमति है। देखिए मनुस्मृति अध्याय 5 के निम्नलिखित श्लोक–

''ब्राह्मण यज्ञ के निमित्त अथवा भृत्यों के रक्षार्थ प्रशस्त पशु-पक्षियों का वध कर सकते हैं—क्योंकि अगस्त्य मुनि ने पहले ऐसा किया है।'' (मनुस्मृति,5/22)

''पहले ऋषियों, ब्राह्मणों और क्षत्रियों ने जो यज्ञ किए उनमें भी भक्ष्य पशु-पक्षियों के मांस के पुरोडाश (हवि, आहुत) हुए हैं।'' (मनुस्मृति, 5/23)

''मन्त्रों द्वारा पवित्र किया हुआ मांस खाना चाहिए। ब्राह्मण को जब कभी मांस खाने की इच्छा हो तो वह विधि के नियम से मांस खा सकता है। रुग्णावस्था में अन्य आहार से प्राणांत के भय से खा सकता है। ब्रह्मा ने यह सब प्राण के लिए अन्न कल्पित किया है। स्थावर (अन्न, फल आदि) और जंगम (चलनेवाले) पशु-पक्षी आदि सब प्राण के ही भोजन हैं।'' (मनुस्मृति, 5/27-28)

''(श्राद्ध या मधुपर्क में) तथा विधि नियुक्त होने पर जो मनुष्य मांस नहीं खाता वह मरने के इक्कीस जन्म तक पशु होता है। ब्रह्मण कभी मंत्रों से बिना संस्कार किए पशुओं का मांस न खाए, सनातन विधि को मानता हुआ मंत्रों से संस्कृत किए पशुओं का मांस खाए।'' (मनुस्मृति,5/35-36)

सन्त विनोबा जी गीता प्रवचन में कहते हैं—''भवभूति के उत्तर रामचरित'' में एक प्रसंग आया है। बाल्मीकि के आश्रम में वशिष्ठ ऋषि आए। उनके स्वागत में एक छोटा सा गाय का बछड़ा मारा गया तो एक छोटा लड़का बड़े लड़के से कहता है, 'आज हमारे आश्रम में एक दाढ़ी वाला आया है उसने हमारा बछड़ा मार डाला।' बड़ा लड़का उत्तर देता है— 'अरे वे तो वशिष्ट ऋषि हैं, ऐसा मत बक।' (गीता प्रवचन— अध्याय 7, पृष्ठ 256)

1. ऐसे अनेकों प्रमाण विद्वानों की पुस्तकों में हमारे सम्मुख हैं। मासिक ''सरिता'' दिल्ली में रतनलाल बंसल के गौ-वध विषय पर कई लेख प्रकाशित हुए थे।

धर्मों के अनुयायी, इनमें मांसाहारी मौजूद हैं। स्वयं भारत में छोटे से वर्ग को छोड़कर सारी हिन्दू जाति मांस-मछली खा रही है। यह कैसा तमाशा या अन्धेर है कि देवी-देवताओं पर भैंसे और बकरों की बलि करते जाना और मांस-मछली खाते जाना और इस्लाम पर जीव हिंसा का आक्षेप करते जाना।... इस्लाम किसी एक देश या एक जाति का धर्म नहीं है, सर्व विश्व का ईश्वरीय धर्म है। संसार में अनेक देश हैं जिनके निवासियों की मुख्य जीविका मांस या मछली या दोनों हैं फिर सार्वभौम धर्म इस्लाम जीवन हिंसा को प्रतिबन्धित कैसे ठहरा देता?

इस्लामी राज्य सम्बन्धी प्रश्न

साधारणतः समझा जाता है कि रामराज्य, विक्रमादित्य और अशोक के जैसे आदर्श राज्य इस्लाम द्वारा स्थापित नहीं हुए हैं। किन्तु वास्तविकता यह नहीं है।[1]

रामराज्य की आधारशिला ऐतिहासिक नहीं बल्कि पौराणिक और काल्पनिक है। इसके अलावा सीता निर्वासन और ब्राह्मणवाद के पोषक तत्व के कारण आधुनिक काल में वह आलोचना का विषय बना हुआ है जैसाकि दक्षिण भारत में स्वयं हिन्दू ही तुलसीकृत रामायण के प्रति आदर का भाव प्रकट नहीं कर रहे हैं। जहाँ तक अशोक का धर्मराज्य का प्रश्न है, वह भी बौद्ध धर्म द्वारा अति रंजित है। जब तक अशोक का व्यक्तित्व रहा तब तक वह साम्राज्य जीवित रहा उसके बाद वह सहसा नष्ट हो गया और भारतीय क़ौम को उसने बहुत कमज़ोर कर दिया। अशोक के बाद भारत का कई सदियों का इतिहास अन्धकार में है। बौद्ध धर्म प्रसार नीति के लिए प्रसिद्ध है न कि आदर्श और स्थायी शासन के लिए। डॉ० भण्डारकर ने अशोक की उपलब्धियों की कटु आलोचना की है। विक्रमादित्य का युग स्वर्ण युग अवश्य रहा, लेकिन अन्तर्राष्ट्रीय आधार पर नहीं। भारत में उस समय हिन्दू ही प्रधान थे। इस दृष्टिकोण से शेरशाह और अकबर, जहाँगीर और शाहजहाँ का

---

1. इस्लामी राज्य की वास्तविकता से साधारण लोग अवगत नहीं हैं। इस्लामी राज्य का सिद्धान्त सर्वोच्च है। सारी सृष्टि और यह संसार ईश्वर का है, वही इसका स्वामी और शासक है। मनुष्य उसका प्रतिनिधि है। उसका यह अधिकार नहीं है कि वह जिस तरह चाहे शासन करे। उसका कर्त्तव्य है कि वह ईश्वर प्रदत्त संविधान के अनुसार शासन करे। जो राज्य इस सिद्धान्त पर आधारित न हो वह इस्लामी राज्य नहीं हो सकता चाहे उसका शासक मुसलमान ही हो। भारत में मुसलमानों ने जो राज्य स्थापित किया वह पूर्णतः इस्लामी राज्य न था। इस्लामी राज्य का संविधान पवित्र क़ुरआन है। आदर्श इस्लामी राज्य वह था जिसे ईशदूत महामान्य मुहम्मद साहब (सल्ल०) ने स्थापित किया था। आदर्श इस्लामी शासक महामान्य के ख़लीफ़ा (उत्तराधिकारी) अबू बक्र, उमर, उसमान और अली (रज़ि०) थे। ये आदर्श ईश्वर भक्त थे। शासन में फ़क़ीरी करते थे और फ़क़ीरी में शासन। ये इतने प्रजापालक, इतने न्यायशील और इतने निःस्वार्थ और ऐसा साधारण जीवन व्यतीत करनेवाले थे कि इतिहास में उनका उदाहरण खोजे नहीं मिल सकता।

ऐतिहासिक स्वर्ण युग अधिक प्रभावी और प्रशंसनीय है कि उनका साम्राज्य अधिक विस्तृत था और हिन्दुओं के बहुसख्य होते हुए ये शासक अल्पसंख्यक वर्ग के थे। उनकी धार्मिक उदारता और उनके समय की सुख-समृद्धि अधिक प्रभावशाली है विक्रमादित्य के काल से। अन्तर्राष्ट्रीय दृष्टिकोण से मुहम्मद साहब के चार प्रथम ख़लीफ़ाओं की सादगी का आदर्श और बाद के ख़लीफ़ा हारून रशीद का असाधारण रूप से उच्च शासन का इतिहास में दूसरा उदाहरण नहीं है। दूर न जाकर वर्तमान काल में महँगाई, असहिष्णुता और उच्चशासक वर्ग में भ्रष्टाचार का असाध्य रोग व्याप्त है उस सन्दर्भ में मूल्यों के नियन्त्रण हेतु अलाउद्दीन, सहिष्णुता के लिए शेरशाह और सर्वोच्च शासक में व्यक्तिगत पवित्रता के लिए औरंगज़ेब सहज में याद आते हैं।

मुसलमानों पर पृथकतावाद का आरोप

मुसलमानों पर आरोप लगाया जाता है कि वे बड़े पृथकतावादी हैं। औष्ट्रिक, नीग्रो, मंगोल आदि जितनी जातियाँ भारत आईं, हिन्दुओं में घुल-मिलकर एक हो गईं परन्तु मुसलमान अब तक अपना पृथक् अस्तित्व बनाए हुए हैं।

मुसलमानों पर यह आरोप लगानेवाले इसके कारणों पर विचार नहीं करते। मुसलमानों के पहले जो जातियाँ भारत आईं उनके पास न हिन्दुओं के धर्म जैसा धर्म था, न विद्या जैसी विद्या थी, न ज्ञान था, अत: वे हिन्दुओं में घुलमिल गईं। किन्तु इसका परिणाम क्या हुआ? हिन्दू धर्म विकृत हो गया। वर्तमान हिन्दू धर्म प्राचीन वैदिक धर्म नहीं है। यह अनेक धर्मों का सम्मिश्रण है।

दूसरी जातियों के विपरीत मुसलमान एक महान् धर्म, एक महान् धर्म ग्रन्थ क़ुरआन, एक महान् धर्म नेता एवं अन्तिम ईशदूत मुहम्मद साहब का आदर्श जीवन चरित्र और विशाल इतिहास लेकर आए। ये विशुद्ध एकेश्वरवादी थे। उनका आधारभूत कलिमा था— 'ला इलाह इल-लल-लाह' ईश्वर के सिवा कोई उपास्य नहीं, उनको गौरव था कि उनका सिर ईश्वर के सिवा किसी के आगे नहीं झुक सकता। यहाँ असंख्य देवालय थे जिनमें काल्पनिक देवी-देवताओं की पूजा, उपासना और आराधना प्रचलित थी। पशु-पक्षी तक पूज्य थे। यहाँ अवतारवाद मान्य था, वहाँ मुहम्मद साहब भी ईश्वर के उपासक, भक्त एवं अन्तिम दूत मात्र थे; यहाँ ब्राह्मणवाद था, शुद्ध-अशुद्ध था, ऊँच-नीच था। मुसलमानों में यह सब भेदभाव न था, सब समान थे।

मुसलमान अपनी सभ्यता, भाषा आदि को सुरक्षित रखना चाहते हैं तो उनपर अराष्ट्रीय होने की लांछना लगाई जाती है। हिन्दुओं का अपना क्या हाल है? हिन्दू तो सब हैं फिर उनकी भाषा क्यों भिन्न-भिन्न हैं और क्यों भाषाओं के आधार पर राज्य बने हैं? दक्षिण के हिन्दू तो हिन्दी का विरोध भी कर रहे हैं। सिख अपना

राज्य ही अलग चाहते हैं। कश्मीर में मुसलमानों का बहुमत है जम्मू के हिन्दू उसे सहन नहीं कर रहे हैं। चाहते हैं जम्मू को हिमाचल प्रदेश में सम्मिलित कर दिया जाए। सभी प्रदेश केन्द्र से अधिक अधिकार अर्थात् अधिक स्वतन्त्रता की माँग कर रहे हैं, और पृथकता और अराष्ट्रीयता के दोषी केवल मुसलमान ठहराए जा रहे हैं। यह कैसा न्याय है? कुछ मुख्य बातों को छोड़कर मुसलमान किस बात में राष्ट्र से पृथक् हैं? पुलिस, पी०ए०सी० तथा दूसरे विभागों में उनके अनुपात के अनुसार स्थान नहीं दिया जाता। तीस वर्ष से उनके साथ अन्याय हो रहा है।

मुसलमानों पर अराष्ट्रीयता का लांछन लगाना

कहा जाता है कि मुसलमानों का दृष्टिकोण राष्ट्रीय नहीं है और वे अरब और अन्य मुसलिम राष्ट्रों से प्रेरणा ग्रहण करते हैं।

यह धारणा सर्वथा मिथ्या है और शायद इससे बढ़कर कोई दूषित विचारधारा नहीं हो सकती। बल्कि यदि यह कहा जाए तो अधिक सत्य होगा कि इससे बढ़कर अनर्गल और भ्रष्ट कोई बात नहीं हो सकती। इतिहास इस विचारधारा के ठीक विपरीत है। भारत में मुसलमानों का स्थायी शासन 712 ई० से 1857 ई० तक रहा। वे भारत के लिए जिए और भारत ही के लिए मरे। सामान्य बुद्धिवाला भी यह नहीं समझ सकता कि अराष्ट्रीय लोग किसी देश में एक हज़ार साल से निवास ही नहीं करते हों, बल्कि वहाँ के शासक भी रहे हों, और यदि मुसलमान अराष्ट्रीय होते तो बहुसंख्यक हिन्दू उनके विरुद्ध सामूहिक विद्रोह कर देते, लेकिन हज़ार साल की अवधि में ऐसा कभी न हुआ। आरम्भ को छोड़कर अर्थात् मुसलमानों के यहाँ स्थायी निवास से पूर्व को छोड़कर दस सदियों में एक भी युद्ध ऐसा नहीं हुआ जिसमें एक ओर केवल हिन्दू रहे हों और दूसरी ओर केवल मुसलमान। इसके विपरीत हिन्दुओं की रक्षक जाति राजपूत मुसलिम साम्राज्य के स्तम्भ थे। काबुल पर मुग़ल साम्राज्य के मानसिंह के द्वारा विजय, भारत की विजय समझी जाती थी। शिवाजी की सेना में भी मुसलमान थे। यहाँ तक कि औरंगज़ेब के सेनापति भी राजा जयसिंह थे। इतिहास से सिद्ध होता है कि हिन्दू जाति ने मुसलमानी राज्य को विदेशी राज्य कभी नहीं समझा। इसके विपरीत 1857 ई० में भारतीय शासक वर्ग के दुर्बल हो जाने पर हिन्दू-मुसलिम अंग्रेजी शासन के विरुद्ध अपने ढंग से लगातार विरोध करते रहे। 1857 ई० में प्रथम भारतीय स्वतन्त्रता की लड़ाई मुग़ल सम्राज्य बहादुरशाह के नेतृत्व में लड़ी गई और हिन्दुओं ने सहर्ष अंग्रेज़ी शासन के विरुद्ध एकमत होकर मुग़ल सम्राट का नेतृत्व स्वीकार किया। संक्षेप में प्रथम स्वतन्त्रता युद्ध में मुसलमानों का योगदान हिन्दुओं के बराबर रहा। 1920-21 ई० में कांग्रेस में तभी शक्ति आई जब मुसलमानों ने ख़िलाफ़त आन्दोलन को कांग्रेस में मिश्रित कर दिया। 1916

ई० में जिन्ना के प्रभाव से कांग्रेस के साथ सम्पूर्ण स्वाधीनता के लिए समझौता हुआ। भारत के स्वतंत्र होने तक विशुद्ध मुसलिम प्रदेश सीमा प्रान्त अब्दुल ग़फ़्फ़ार ख़ाँ के नेतृत्व में कांग्रेस के साथ था। सुभाषचन्द्र बोस की आज़ाद हिन्द फ़ौज में भी मुसलमानों का योगदान अपूर्व था। क्रान्तिकारियों में अशफ़ाकुल्लाह स्मरणीय हैं। कांग्रेस की कल्पना बिना अबुल कलाम आज़ाद व हिफ़ज़ुर्रहमान के अधूरी है। यह सही है कि पाकिस्तान का निर्माण हुआ, लेकिन इसके जनक मिस्टर जिन्ना भी राष्ट्रीय ही थे। 1937 ई० में कांग्रेस ने मन्त्रिमण्डल में दो सीटें मुसलिम लीग को देने का वादा किया, लेकिन निर्वाचन में सफलता से गर्वित होकर उसने अपना वादा तोड़ दिया और शर्त रख दी कि दोनों मुसलिम लीगी सदस्य कांग्रेस में सम्मिलित हों। यह जिन्ना का घोर अपमान था। पाकिस्तान निर्माण का उत्तरदायित्व अकेले मुसलिम नेताओं पर ही नहीं है बल्कि हिन्दू कांग्रेसी नेताओं की अदूरदर्शिता, गर्व और धींगा-धींगी भी थी। सौदेबाज़ी और धाँधली की भी हद होती है। वस्तुतः पाकिस्तान का निर्माण न हिन्दुओं द्वारा हुआ और न मुसलमानों द्वारा हुआ, इसका निर्माण अदूरदर्शी नेताओं ने किया चाहे वे हिन्दू राजनीतिज्ञ रहे हों या मुसलिम। बल्कि इसके लिए कांग्रेस ही अधिक उत्तरदायी है। एक तरफ़ कांग्रेस अपने को समस्त भारतीयों का प्रतिनिधित्व करने की दावेदार थी, दूसरी ओर हिन्दुओं का प्रतिनिधित्व अलग से करने का दावा भी करती थी। अतः जो होना था वह हुआ। दो-दो युद्ध पाकिस्तान से हुए। लेकिन क्या भारत के मुसलमान पाकिस्तान के पक्षधर थे? अब्दुल हमीद का बलिदान क्या ऐतिहासिक बलिदान नहीं है? इक़बाल से बढ़कर राष्ट्रगान (क़ौमी तराना) किसने लिखा? यदि मलिक मुहम्मद जायसी, रसखान, कुतबन, शेख़, कबीर, रहीम और सर्वोपरि हिन्दी के जनक ख़ुसरो को हिन्दी से अलग कर दिया जाए तो हिन्दी का क्या महत्व रह जाएगा? क्या मुसलमानों ने स्वतन्त्र भारत में कभी हिन्दी का विरोध किया? इसके विपरीत जब दक्षिण भारत के हिन्दू एक मत से हिन्दी के विरुद्ध हैं तो शेख अब्दुल्ला ने हिन्दी की हिमायत में आवाज़ बुलन्द की। इसके विपरीत स्वतन्त्र भारत में मुसलमानों की यह उचित माँग कि उर्दू को द्वितीय भाषा स्वीकार कर लिया जाए अब तक नहीं मानी गई। मक्का मदीना तो मुसलमानों का तीर्थ है। उससे प्रेरणा लेने में आपत्तिजनक क्या है? यदि इंगलैण्ड का अंग्रेज़ यरूशलम का श्रद्धालु है तो क्या वह इंगलैण्ड के लिए अराष्ट्रीय है? क्या बर्मा का बौद्ध सारनाथ के प्रति श्रद्धा रखने से बर्मा के प्रति अराष्ट्रीय हो जाता है? क्या स्वतन्त्र नेपाल का हिन्दू काशी के लिए श्रद्धालु नहीं है? वस्तुतः हिन्दुओं का यह आरोप कि मुसलिम अराष्ट्रीय हैं और अरब और अन्य मुसलिम देशों से प्रेरित होते हैं, इस तथ्य में निहित है कि भारत के अलावा किसी अन्य देश में उनके (हिन्दुओं के) तीर्थ नहीं हैं। नेपाल ही ऐसा राष्ट्र है, लेकिन स्वतंत्र भारत में उससे भी कुछ अच्छे सम्बन्ध नहीं रहे।